शेष स्मृतियाँ

लेखक

रघुवीरसिंह, डी० लिट्०

आचार्य-प्रवर

पं० रामचन्द्र जी शुक्ल लिखित

"प्रवेशिका" सहित

१९५१

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली : बम्बई

जिनकी

अब स्मृति-मात्र शेष है

उन्हीं

मेरी पूज्या स्वर्गीया जननी की

उस शेष स्मृति को

ये

"शेष स्मृतियाँ"

सादर सस्नेह समर्पित

प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन लिमिटेड
नई दिल्ली बम्बई

पहली बार—सन् १९३९ ई०
दूसरी बार—सन् १९४६ ई०
तीसरी बार—सन् १९५१ ई०
मूल्य ४)

मुद्रक—जे० के० शर्मा, इलाहाबाद ला जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

प्रवेशिका

वरसात का वारहो मास अनुभव करने के लिए वे उपाय सोचने लगे, .. तब उस स्वर्ग के देवताओ ने इन स्वर्ग के अधिष्ठाताओ को सन्तुष्ट करने की सोची। और जब इस स्वर्ग मे अवतरित हुआ वारहमासी सावन और भादो, .वारहो मास मद झरने लगा, और साथ ही दिन रात वह उज्ज्वलित भी रहने लगा। तब भी मदमस्त शासक अधेरे मे—उनके हृदयो मे पहिले ही पर्याप्त अधकार था, उन्होने हज़ारो वत्तियो द्वारा सावन और भादो को उज्ज्वलित किया, और उन वत्तियो का प्रकाश स्वर्गीय जीवन के प्रवाह मे होकर जाता था, उस मदभरे वातावरण मे पहुँचते पहुँचते वह उज्ज्वल प्रकाश भी अनेकानेक रगो मे रँग जाता था। तिल तिल कर जलने वाली स्नेह-सिक्त वत्तियो के प्रकाश पर भी जब इतना गहरा रंग चढ जाता था, तब उन स्वर्ग के मदमाते देवता उस रगावली को देख कर कितने उन्मत्त होते होंगे ? एक इन्द्रधनुष ही ससार को आकर्षित कर लेता है, वहाँ तो हजारो इन्द्रधनुष विखरे पडे थे। मस्ती का प्रभाव, उस स्वर्ग का निवास और उस पर निरन्तर झरने वाला मद, और अनेकानेक उन्मादक रगो की वह सुन्दर आवली . सावन और भादो इस पार्थिव लोक में भी उन्मादक होते है.. और उस स्वर्ग में तो मनुष्य की क्षुद्रता बताने वाला वह कठोर वज्र भी नहीं देख पडता था, और न वहाँ मनुष्यो को जरा सी मस्ती से उन्मत्त होने वाले उन दादुरो की टर्-टर् ही सुननी पडती थी, और वह नशा एक-दो मास ही नहीं, निरन्तर वरसो तक, युगो तक ..। स्वर्ग के वे उपभोक्ता, उस लोक के वे देवता, और उस स्वर्ग के सावन और भादो . उस स्वर्ग के सावन से अन्धे, उन्मत्त मदमस्त अन्धे, जिनका अन्तरंग भी मादक मद में से होकर गुजरने वाले प्रकाश से ही आलोकित होता था [illegible] प्रकाश तक उन अमिट रागो मे रँग गए, तब मनुष्य ..।

× × ×

बार के चारों कोनो मे "आदाब !" "आदाब !" की आवाजे गूँजने लगती थीं। अब उस दरबार मे चर्चा होती थी उस दूसरे लोक मे होने वाली अनेकानेक घटनाओ की, वहाँ मयखाने का उजड़ना, साकी की गैरहाजरी, जाम का ढुलक जाना, यारो का बिछड जाना रकीबो की ज्यादती, माशूकों की कठोरता, आशिको की बेबसी, उनके मरने के बाद उनकी मजार पर जाकर माशूको का रोना और माशूको की गली से आशिको का निकाला जाना । और दिल्ली-श्वर ने एक बार फिर जगदीश्वर की समता ही न की परन्तु इस बार तो उसे भी हरा दिया, दिल्लीश्वर की इस नवीन बादशाहत में कोई भी बन्धन न थे और न यहाँ जगदीश्वर की भीषण यातना का डर ही उन्हे सताता था।

परन्तु उस उजडते हुए भग्नप्राय स्वर्ग की दर्दनाक आवाज पहुँची उस कल्पनालोक मे भी। सदेह स्वर्ग मे, कल्पनालोक में, पहुँच कर भी कौन अपने टूटे दिल को भुला सका है। वहाँ भी वही दर्द उठता था, कसक का अनुभव होता था, और जब कभी वह टूटा दिल थक कर सो जाता था, तभी कुछ उल्लास आता था. परन्तु वह क्षणिक उल्लास और उसके बाद फिर वही शोर. उस मद-माते स्वर्ग की इससे अधिक व्यंग्यपूर्ण तीक्ष्ण आलोचना नहीं हो सकती थी।. .और तभी उस स्वर्ग के पीडित नायक, जिनके टूटे दिलों के कारण ही, उस दूसरे लोक में भी शासन न कर सके। बहादुर 'ज़फ़र' तो उस कल्पनालोक मे भी रोता था. अपनी पहल कर ही वह वहाँ पहुँचा था। वहाँ भी वही बेबसी थी, वही रोना था। यहाँ भी ज़फ़र के आँसुओं ने कल्पना की उज्ज्वलता को धो दिया. उस बहार, सद् आँसुओं में सारी मस्ती बह गई थी. उन आँसुओं [illegible] से वह [illegible] भावना [illegible] कर सूनसान हो गई थी। हाँ! 'कलम ने खून से रौशन कर दिया' [illegible] उस '[illegible]' [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रोते

विषय सूची

जो चमन ख़िज़ाँ से उजड़ गया,
मैं उसी की फस्लेबहार हूँ।
न तो मैं किसी का हबीब हूँ
न तो मैं किसी का रकीब हूँ।
जो बिगड़ गया वह नसीब हूँ
जो उजड़ गया वह दयार हूँ।
कोई फूल मुझ पर चढ़ाये क्यों,
कोई मुझ पे अश्क बहाये क्यों ?
कोई आ के शमआ जलाये क्यों,
के मैं बेक़सी का मज़ार हूँ।"

और ज्यों ज्यों इस गाने के अन्तिम शब्द सुन पड़ने लगे, जब उनकी आखिरी तान कान में पड़ रही थी, मुर्गे ने बाँग दी और अन्धकार में वह प्रेत विलीन हो गया, वह दिया टिमटिमाता रह गया, शान्त निस्तब्धता छा गई और वहीं पास ही पड़ा था सुगन्ध वन का वह निर्जीव अस्थिपंजर, उनकी आकांक्षाओं के वे अवशेष, उनकी साध-नाओं की वह समाधि. .।

सूरज निकला ।...अन्धड चढ़ रहा था दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्य-रूपी बादलों से छा रहा था; .वह दिया, उन स्वर्गीय जीवन की अन्तिम आशाओं का यह चिराग—स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ [illegible] बुझ गई, और तब. उन [illegible] की आशाओं का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषों का, अकबर और शाहजहाँ के वंशजों की [illegible] का जनाज़ा उस स्वर्ग से निकला। [illegible] आसमान ने सर्वत्र आँसुओं के ओसकण बिखेरे थे [illegible] पृथ्वी को भी [illegible] के कुहरे में राह सूझती न थी। परन्तु .[illegible] [illegible] जीवन-यात्रा [illegible], उस 'उजड़े दयार' का यह [illegible], जिसका [illegible] भी नहीं मालूम है।

कहाँ खो गई। लोहा बजा कर दिल्ली पर अधिकार करने वाले लोहा खड़खड़ाते हुए दिल्ली से निकले, लोहा लेकर वे आए थे, लोहा पहिने वहाँ से गए।

नरक की देखती आँखो स्वर्ग के प्यारो ने तडप तडप कर दम तोडा। वहाँ दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट् की एकमात्र आशाएँ रक्तरंजित होकर पडी थी। कुचली जाने पर उनका लोथडा खून मे शराबोर खण्ड खण्ड होकर पटा था, और उन भग्नाशाओं के घाव तक मुगलो के उस भीषण दुर्भाग्य पर खून के दो आँसू बहाए बिना न रह सके। अन्तिम बार उस पाञ्चाली ने अपने पुत्रो को [illegible] होकर अपने सम्मुख आते देखा, और उसका पति वहीं सिर नीचा किए बैठा बेबस देख रहा था। उफ! दुर्भाग्य की भीषण भट्टी मे आँसू सूख गए थे, आहें भस्म हो गई थीं, और उसकी उस त्वचा में रुधिर शेष रहा न था, निर्जीव होकर झुर्रियों का बाना [illegible]ने वह निश्चेष्ट पडी थी। अरे! उसके केशो तक ने भस्म रमा [illegible]ी थी। परन्तु प्रलय का ऐसा हृदयद्रावक दृश्य भी उसे रुला न सका। जीवन भर रुधिर की घूंट पी जाने वाला इस बार आँसू पीकर ही रह गया।

मुगल साम्राज्य ने दो हिचकी मे दम तोडा, नरक ने उस बहाते हुए स्नेह को, मस्ती की उस अन्तिम प्याली की रही-सही तलछट को मिट्टी मे मिलते देखा, उन आशा-प्रदीपो को बुझते देखा ...। उस नरक के वे कठोर पत्थर अभागों के दुःख को देख कर भी न पसीजने वाले, अभागो के टूटे दिलों के वे घनीभूत पुंज भी रो पडे, और आज भी उनके आँसू थमे नहीं है। मुगल साम्राज्य के वे मार्मिक घाव आज भी उस नरक में हरे है, रह-रह कर उनमें घाव [illegible] है, और [illegible] आज भी उन्हीं घावों को देख कर [illegible] उनके दर्द का अनुभव होता है, आज भी [illegible] आँसू ढलक पड़ते है।

आँसू ढलक रहे थे, उधर प्रभात उदय हो रहा था, [illegible] भी [illegible]

प्रवेशिका

अतीत की स्मृति में मनुष्य के लिए स्वाभाविक आकर्षण है। अर्थ-परायण लाख कहा करें कि 'गड़े मुरदे उखाड़ने से क्या फ़ायदा' पर हृदय नहीं मानता, बार बार अतीत की ओर जाया करता है; अपनी यह बुरी आदत नहीं छोड़ता। इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। हृदय के लिए अतीत मुक्ति-लोक है जहाँ वह अनेक बन्धनों से छूटा रहता है और अपने शुद्ध रूप में विचरता है। वर्त्तमान हमें अन्धा बनाए रहता है; अतीत बीच बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है। मैं तो समझता हूँ कि जीवन का नित्य स्वरूप दिखाने वाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है; आगे तो बराबर खिसकता हुआ परदा रहता है। बीती बिसारने वाले 'आगे की सुध' रखने का दावा किया करें, परिणाम अशान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वर्त्तमान को सँभालने और आगे की सुध रखने का डंका पीटने वाले संसार में जितने ही अधिक होते जाते हैं संघशक्ति के प्रभाव से जीवन की उलझनें उतनी ही बढ़ती जाती हैं। बीती बिसारने का अभिप्राय है जीवन की अखंडता और व्यापकता की अनुभूति का विसर्जन, सहृदयता और भावुकता का भंग—केवल अर्थ की निष्ठुर क्रीड़ा।

कुशल यही है कि जिनका दिल सही सलामत है, जिनका हृदय मारा नहीं गया है, उनकी दृष्टि अतीत की ओर जाती है। क्यों जाती है, क्या करने जाती है, यह बताते नहीं बनता। अतीत कल्पना का लोक है, एक प्रकार का स्वप्नलोक है, इसमें तो सन्देह नहीं। अत. यदि कल्पनालोक के सब खंडों को सुखपूर्ण मान लें तब तो प्रश्न टेढ़ा नहीं रह जाता, झट से कहा जा सकता है कि वह सुख प्राप्त करने

जाती है। पर मेरी समझ में अतीत की ओर मुड मुड़ कर देखने की प्रवृत्ति सुख-दुःख की भावना से परे है। स्मृतियां मुझे केवल "सुख-पूर्ण दिनो के भग्नावशेष" नहीं समझ पडतीं। वे हमें लीन करती हैं, हमारा मर्म स्पर्श करती हैं, बस, हम इतना ही कह सकते हैं।

जैसे अपने व्यक्तिगत अतीत जीवन की मधुर स्मृति मनुष्य में होती है वैसे ही समष्टि रूप में अतीत नर-जीवन की भी एक प्रकार की स्मृत्याभास कल्पना होती है जो इतिहास के संकेत पर जगती है। इसकी मार्मिकता भी निज के अतीत जीवन की स्मृति की मार्मिकता के समान ही होती है। नर-जीवन की चिरकाल से चली आती हुई अखड परम्परा के साथ तादात्म्य की यह भावना आत्मा के शुद्ध स्वरूप की नित्यता और असीमता का आभास देती है। यह स्मृति-स्वरूपा कल्पना कभी कभी प्रत्यभिज्ञान का भी रूप धारण करती है। जैसे प्रसग उठने पर इतिहास द्वारा ज्ञात किसी घटना के ब्योरो को कही बैठे बैठे हम मन में लाया करते हैं, वैसे ही किसी इतिहास-प्रसिद्ध स्थल पर पहुँचने पर हमारी कल्पना या मूर्त्त भावना चट उस स्थल पर की किसी मार्मिक घटना के अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाले कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियो के बीच हमें पहुँचा देती है जहाँ से फिर हम वर्त्तमान की ओर लौट कर कहने लगते हैं—'यह वही स्थल है जो कभी सजावट से जगमगाता था, जहाँ अमुक सम्राट् सभासदो के बीच सिंहासन पर बिराजते थे, यह वही द्वार है जहाँ अमुक राजपूत वीर अपूर्व पराक्रम के साथ लडा था' इत्यादि। इस प्रकार हम उस काल से लेकर इस काल तक अपनी सत्ता के आरोप का अनुभव करते हैं।

अतीत की कल्पना स्मृति की सी सजीवता प्राप्त करके अवसर पाकर प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप धारण कर सकती है जिसका आधार या तो आप्त शब्द (इतिहास) अथवा अनुमान होता है। अतीत की यह स्मृति-स्वरूपा कल्पना कितनी मधुर, कितनी मार्मिक और कितनी

लीन करने वाली होती है, सहृदयों से न छिपा है, न छिपाते बनता है। मनुष्य की अन्तःप्रकृति पर इसका प्रबल प्रभाव स्पष्ट है। हृदय रखने वाले इसका प्रभाव, इसकी सजीवता अस्वीकृत नही कर सकते। इस प्रभाव का, इस सजीवता का, मूल है सत्य। सत्य से अनुप्राणित होने के कारण ही कल्पना स्मृति और प्रत्यभिज्ञान का सा सजीव रूप प्राप्त करती है। कल्पना के इस स्वरूप की सत्यमूलक सजीवता का अनुभव करके ही संस्कृत के पुराने कवि अपने महाकाव्य और नाटक किसी इतिहास-पुराण के वृत्त का आधार ले कर ही रचा करते थे।

सत्य से यहाँ अभिप्राय केवल वस्तुतः घटित वृत्त ही नहीं निश्चयात्मकता से प्रतीत वृत्त भी है। जो बात इतिहासो में प्रसिद्ध चली आ रही है वह यदि प्रमाणो से पुष्ट भी न हो तो भी लोगों के विश्वास के बल पर उक्त प्रकार की स्मृति-स्वरूपा कल्पना का आधार हो जाती है। आवश्यक होता है इस बात का पूर्ण विश्वास कि इस प्रकार की घटना इस स्थल पर हुई थी। यदि ऐसा विश्वास कुछ विरुद्ध प्रमाण उपस्थित होने पर विचलित हो जायगा तो इस रूप की कल्पना न जगेगी। दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि आप्त वचन या इतिहास के संकेत पर चलने वाली मूर्त्त भावना भी अनुमान का सहारा लेती है। कभी कभी तो शुद्ध अनुमिति ही मूर्त्त भावना का परिचालन करती है। यदि किसी अपरिचित प्रदेश में भी किसी विस्तृत खंडहर पर हम जा बैठें तो इस अनुमान के बल पर ही कि यहाँ कभी अच्छी बस्ती थी, हम प्रत्यभिज्ञान के ढंग पर इस प्रकार की कल्पना में प्रवृत्त हो जाते है कि 'यह वही स्थल है जहाँ कभी पुराने मित्रो की मंडली जमती थी, रमणियो का हास-विलास होता था, बालकों का क्रीडा-कलरव सुनाई पड़ता था' इत्यादि। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रत्यभिज्ञान-स्वरूपा यह कोरी अनुमानाश्रित कल्पना भी सत्यमूल होती है। वर्त्तमान समाज का चित्र सामने लाने वाले उपन्यास भी अनुमानाश्रित होने के कारण सत्यमूल होते है।

हमारे लिए व्यक्त सत्य है जगत् और जीवन। इन्हीं के अन्तर्भूत रूप-व्यापार हमारे हृदय पर मार्मिक प्रभाव डालकर हमारे भावो का प्रवर्त्तन करते है, इन्हीं रूप-व्यापारो के भीतर हम भगवान् की कल्पना का साक्षात्कार करते है, इन्हीं का सूत्र पकड़ कर हमारी भावना भगवान् तक पहुँचती है। जगत् और जीवन के ये रूप-व्यापार अनन्त है। कल्पना द्वारा उपस्थित कोई रूप-व्यापार जब इनके मेल में होता है तब इन्हीं में से एक प्रतीत होता है, अत. ऐसा काव्य सत्य के अन्तर्गत होता है। उसी का गम्भीर प्रभाव पडता है। वही हमारे मर्म का स्पर्श करता है। कल्पना की जो कोरी उड़ान इस प्रकार सत्य पर आश्रित नहीं वह हलके मनोरजन की वस्तु है, उसका प्रभाव केवल वेल-बूटे या नक्क़ाशी का-सा होता है, मार्मिक नहीं।

हमारा भारतीय इतिहास न जाने कितने मार्मिक वृत्तो से भरा पड़ा है। मै बहुत दिनो से इस आसरे में था कि सच्ची ऐतिहासिक कल्पना वाले प्रतिभा-सम्पन्न कवि और लेखक हमारे वर्त्तमान हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में प्रकट हो। किसी काल की सच्ची ऐतिहासिक कल्पना प्राप्त करने के लिए उस काल से सम्बन्ध रखने वाली सारी उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री की छान-बीन अपेक्षित होती है। ऐसी छान-बीन कोरे विद्वान् तो करते ही रहते है पर उसकी सहायता से किसी काल का जीता-जागता सच्चा चित्र वे ही खडा कर सकते है जिनकी प्रतिभा काल का मोटा परदा पार करके अतीत का एक-एक व्योरा झलका देती है। आसरा देखते-देखते स्वर्गीय 'प्रसाद' जी के नाटक सामने आए जिनमें प्राचीन भारत की बहुत-कुछ मधुर झलक मिली। उनके देहावसान के कुछ दिन पूर्व मैने उपन्यासो के रूप में भी ऐसी झाँकी दिखाने का अनुरोध उनसे किया था जो उनके मन में वैठ भी गया था।

नाटको के रूप में ऐतिहासिक कल्पना का अतीत-प्रदर्शक विधान

देखने पर भावात्मक प्रबन्धो के रूप में स्मृति-स्वरूपा या प्रत्यभिज्ञान-स्वरूपा कल्पना का प्रवर्त्तन देखने की लालसा, जो पहले से मन में लिपटी चली आती थी प्रबल हो उठी। किधर से यह लालसा पूरी होगी, यह देख ही रहा था कि, 'ताजमहल' और 'एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ' नामक दो गद्य-प्रबन्ध देखने में आए। दोनों के लेखक थे महाराजकुमार श्री रघुवीरसिंहजी। आशा ने एक आधार पाया। उक्त दोनो प्रबन्धो में जिस प्रतिभा के दर्शन हुए उसके स्वरूप को समझने का प्रयत्न मैं करने लगा। पहली बात मुझे यह दिखाई पड़ी कि महाराजकुमार की दृष्टि उस कालखंड के भीतर रमी है जो भारतीय इतिहास में 'मध्यकाल' कहलाता है। आपकी कल्पना और भावना को जगाने वाले उस काल के कुछ स्मारक चिह्न है, यह देख कर इसका भी आभास मिला कि आपकी कल्पना किस ढंग की है। जान पड़ा कि वह स्मृति-स्वरूपा है, जिसकी मार्मिकता के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है। महाराजकुमार ऐसे इतिहास के प्रकाण्ड विद्वान् के हृदय में ऐसा भाव-सागर लहराते देख मैं तृप्त हो गया। विद्वत्ता और भावुकता का ऐसा योग संसार में अत्यन्त विरल है।

प्रस्तुत संग्रह का नाम है "शेष स्मृतियाँ"। इसमें महाराज-कुमार के पाँच भावात्मक निबन्ध है जिनके लक्ष्य है—ताजमहल, फ़तहपुर सीकरी, आगरे का किला, लाहौर की तीन (जहाँगीर, नूरजहाँ और अनारकली की) क़ब्रें और दिल्ली का क़िला। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये पाँचो स्थान जिस प्रकार मुग़ल-सम्राटो के ऐश्वर्य, विभूति, प्रताप, आमोद-प्रमोद और भोग-विलास के स्मारक है उसी प्रकार उनके अवसाद, विषाद, नैराश्य और घोर पतन के। मनुष्य की ऐश्वर्य, विभूति, सुख और सौंदर्य की वासना अभि-व्यक्त होकर जगत् के किसी छोटे या बड़े खंड को अपने रंग में रंग कर मानुषी सजीवता प्रदान करती है। देखते-देखते काल उस

वासना के आश्रय मनुष्यो को हटाकर किनारे कर देता है। धीरे-धीरे ऐश्वर्य-विभूति का वह रंग भी मिटता जाता है। जो-कुछ शेष रह जाता है वह बहुत दिनो तक ईंट-पत्थर की भाषा में एक पुरानी कहानी कहता रहता है। ससार का पथिक मनुष्य उसे अपनी कहानी समझ कर सुनता है क्योकि उसके भीतर झलकता है जीवन का नित्य और प्रकृत स्वरूप।

ये स्मारक न जाने कितनी बातें अपने पेट में लिए कहीं खड़े, कहीं बैठे, कहीं पडे है। सीकरी का बुलन्द दरवाजा खड़ा है। महाराजकुमार उसके सामने जाते है और सोचते है—

"यदि आज यह दरवाजा अपने सस्मरण कहने लगे, पत्थरो का यह ढेर बोल उठे, तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जावे और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियाँ ठीक की जा सकें।"

कुछ व्यक्तियो के स्मारक चिह्न तो उनके पीछे उनके पूरे प्रतिनिधि या प्रतीक बन जाते है और उसी प्रकार घृणा या प्रेम के आलम्बन हो जाते है जिस प्रकार अपने जीवन-काल में वे व्यक्ति थे—

"जीवन बीत चुकने पर जब मनुष्य उसे समेट कर इस लोक से बिदा लेता है तब ससार उस विगत आत्मा के ससर्ग मे आई हुई वस्तुओ पर प्रहार कर या उन्हे चूम कर समझ लेता है कि वह उस अन्तर्हित आत्मा के प्रति अपने भाव प्रकट कर रहा है। उस मृत व्यक्ति के पाप या पुण्य का भार उठाते है उसके जीवन से सम्बद्ध ईंट और पत्थर।"

किसी अतीत जीवन के ये स्मारक या तो यो ही, शायद काल की कृपा से, बने रह जाते है अथवा जान-बूझ कर छोडे जाते है। जान-बूझ कर कुछ स्मारक छोड जाने की कामना भी मनुष्य की प्रकृति के अन्तर्गत है। अपनी सता के लोप की भावना मनुष्य को असह्य है। अपनी भौतिक सत्ता तो वह बनाए नहीं रख सकता,

अतः वह चाहता है कि उस सत्ता की स्मृति ही किसी जन-समूह के बीच बनी रहे। वाह्य जगत् में नहीं तो अन्तर्जगत् के किसी खंड में ही वह उसे बनाए रखना चाहता है। इसे हम अमरत्व की आकांक्षा या आत्मा के नित्यत्व का इच्छात्मक आभास कह सकते हैं—

"भविष्य मे आने वाले अपने अन्त के तथा उसके अनन्तर अपने व्यक्तित्व के ही नही, अपने सर्वस्व के, विनष्ट होने के विचार मात्र से ही मनुष्य का सारा शरीर सिहर उठता है। . . मनुष्य इस भौतिक ससार मे अपनी स्मृतियॉ—अमिट स्मृतियॉ—छोड जाने को विकल हो उठते है।"

अपनी स्मृति बनाए रखने के लिए कुछ मनस्वी कला का सहारा लेते हैं और उसके आकर्षक सौंदर्य की प्रतिष्ठा करके विस्मृति के गड्ढे में झोंकने वाले काल के हाथो को बहुत दिनों तक—सहस्रों वर्ष तक—थामे रहते हैं—

"यद्यपि समय के सामने किसी की भी नही चलती तथापि कई मस्तिष्कों ने ऐसी खूबी से काम किया, उन्होंने ऐसी चाले चली कि समय के इस प्रलयकारी भीषण प्रवाह को भी बाँधने में वे समर्थ हुए। उन्होंने काल को सौन्दर्य के अदृश्य किन्तु अचूक पाश में बाँध डाला है, उसे अपनी कृतियो की अनोखी छटा दिखा कर लुभाया है, यो उसे भुलावा देकर कई बार मनुष्य अपनी स्मृति के ही नहीं, किन्तु अपने भावो के स्मारको को भी चिरस्थायी बना सका है।"

इस प्रकार ये स्मारक काल के प्रवाह को कुछ थाम कर मनुष्य की कई पीढियो की आँखो से आँसू बहवाते चले चलते हैं। मनुष्य अपने पीछे होने वाले मनुष्यो को अपने लिए रुलाना चाहता है। महाराजकुमार के सामने सम्राटों की अतीत जीवन-लीला के ध्वस्त रंगमंच है, सामान्य जनता की जीवन-लीला के नहीं। इनमें जिस प्रकार भाग्य के ऊँचे-से-ऊँचे उत्थान का दृश्य निहित है वैसे ही गहरे-से-गहरे पतन का भी। जो जितने ही ऊँचे पर चढ़ा दिखाई देता है

गिरने पर वह उतना ही नीचे जाता दिखाई देता है। दर्शकों को उसके उत्थान की ऊँचाई जितनी कुतूहलपूर्ण और विस्मयकारिणी होती है उतनी ही उसके पतन की गहराई मार्मिक और आकर्षक होती है। असामान्य की ओर लोगो की दृष्टि भी अधिक दौड़ती है, टकटकी भी अधिक लगती है। अत्यन्त ऊँचाई से गिरने का दृश्य मनुष्य कुतूहल के साथ देखता है, जैसा कि इन प्रबन्धो में भावुक लेखक कहते हैं—

"ऊँचाई से खड्ड मे गिरने वाले जलप्रपात को देखने के लिए सैकडो कोसो की दूरी से मनुष्य चले आते है। उन उठे हुए कगारो पर टकरा कर उस जलधारा का छितरा जाना, खड-खड होकर फुहारो के स्वरूप मे यत्र-तत्र बिखर जाना, हवा मे मिल जाना —बस इसी दृश्य को देखने मे मनुष्य को आनन्द आता है।"

जीवन तो जीवन—चाहे राजा का हो, चाहे रंक का। उसके सुख और दु.ख दो पक्ष होगे ही। इनमें से कोई पक्ष स्थिर नहीं रह सकता। ससार और स्थिरता? अतीत के लम्बे-चौड़े मैदान के बीच इन उभय पक्षो की घोर विषमता सामने रख कर आप जिस भाव-धारा में डूबे है उसी में औरो को भी डुबाने के लिए भावुक महाराजकुमार ने ये शब्द-स्रोत वहाए है। इस पुनीत भाव-धारा में अवगाहन करने से वर्त्तमान की, अपने-पराये की, लगी-लिपटी मैल छँटती है और हृदय स्वच्छ होता है। सुख-दु:ख की विषमता पर जिसकी भावना मुख्यत. प्रवृत्त होगी वह अवश्य एक ओर तो जीवन का भोग-पक्ष—यौवन-मद, विलास की प्रभूत सामग्री, कला-सौंदर्य की जगमगाहट, राग-रग और आमोद-प्रमोद की चहल-पहल—और दूसरी ओर अवसाद, नैराश्य और उदासी सामने रखेगा। इतिहास-प्रसिद्ध वडे-वडे प्रतापी सम्राटो के जीवन को लेकर भी वह ऐसा ही करेगा। उनके तेज, प्रताप, पराक्रम, इत्यादि की भावना वह इतिहास-विज्ञ पाठक की सहृदयता पर छोड देगा। अपनी पुस्तक में महाराज-

कुमार ने अधिकांश में जो जीवन के भोग-पक्ष का ही अधिक विधान किया है उसका कारण मुझे यही प्रतीत होता है। इसी से 'मद' और 'प्याले' बार बार सामने आए हैं जो किसी को खटक सकते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं सुख और दुःख के बीच का वैषम्य जैसा मार्मिक और हृदयस्पर्शी होता है वैसा ही उन्नति और अवनति, प्रताप और ह्रास के बीच का भी। इस वैषम्य-प्रदर्शन के लिए एक ओर तो किसी के पतन-काल के असामर्थ्य, दीनता, विवशता, उदासीनता इत्यादि के दृश्य सामने रखे जाते हैं; दूसरी ओर उसके ऐश्वर्य-काल के प्रताप, तेज, पराक्रम इत्यादि के वृत्त स्मरण किए जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में दिल्ली के क़िले के प्रसग में शाहआलम, मुहम्मदशाह और बहादुरशाह के बुरे दिनों के चुने चित्र दिखा कर जो गूढ़ और गंभीर प्रभाव डाला गया है उसे हृदय के भीतर गहराई तक पहुँचाने वाली वस्तु है अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि बादशाहों के तेज, प्रताप और पराक्रम की भावना। पर जैसा कि कहा जा चुका है भावुक लेखक ने इस भावना को प्रायः व्यक्त नहीं किया है; उसे पाठक के अन्त.करण में इतिहास द्वारा प्रतिष्ठित मान लिया है।

बात यह है कि सम्राटो के प्रभुत्व, प्रताप, अधिकार इत्यादि सूचित करने वाली घटनाओ का उल्लेख तो इतिहास करता ही है, अतः भावुक कवि या लेखक अपनी कल्पना द्वारा जीवन के उन भीतरी-बाहरी ब्योरों को सामने लाता है जिन्हें इतिहास निष्प्रयोजन समझ छलांग मारता हुआ छोड जाता है। ताजमहल जिस दिन बन कर पूरा हो गया होगा और शाहजहाँ बड़ी धूम-धाम के साथ पहले-पहल उसे देखने गया होगा वह दिन कितने महत्त्व का रहा होगा। पर जैसा कि महाराजकुमार कहते हैं, "उस महान् दिवस का वर्णन इतिहासकारो ने कहीं भी नहीं किया है। कितने

सहस्र नर-नारी आबाल-वृद्ध उस दिन उस अपूर्व मकबरे के दर्शनार्थ एकत्र हुए होगे ? . भिन्न-भिन्न दर्शको के हृदयो मे कितने विभिन्न भाव उत्पन्न हुए होगे ? जिस समय शाह-जहाँ ने ताज के उस अद्वितीय दरवाज़े पर खडे होकर उस समाधि को देखा होगा उस समय उसके हृदय की क्या दशा हुई होगी ?"

भावुक लेखक की कल्पना इतिहास द्वारा छोडे हुए जीवन के ब्योरो को सामने रखने में प्रवृत्त हुई है। बात बहुत ठीक है। इस सम्बन्ध में मेरा कहना इतना ही है कि इतिहास के शुष्क निर्जीव विधान में तेज, प्रताप और प्रभुत्व व्यजित करने वाले ब्योरे भी छूटे रहते है। उनके सजीव चित्र भी शक्तिशाली ऐतिहासिक पुरुषो की जीवन-स्मृति में अपेक्षित है। आशा है उनकी ओर भी महाराजकुमार की भाव-प्रेरित कल्पना प्रवृत्त होगी।

'शेष स्मृतियाँ' में अधिकतर जीवन का भोग-पक्ष विवृत है पर यह विवृति सुख-सौन्दर्य की अस्थिरता की भावना को विषण्णता प्रदान करती दिखाई पड़ती है। इसे हम लेखक का साध्य नहीं ठहरा सकते। संसार में सुख की भावना किस प्रकार सापेक्ष है इसकी ओर उनकी दृष्टि है। वे कहते है—

"दु ख के बिना सुख ! नही, नही ! तब तो स्वर्ग नरक से भी अधिक दु खपूर्ण हो जायगा। स्वर्ग का महत्त्व तभी हो सकता है जब उसके साथ नरक भी हो। स्वर्ग के निवासी उसको देखें तथा स्वर्ग की ओर नरकवासियो द्वारा डाली जाने वाली तरसभरी दृष्टि की प्यास को समझ सके।"

मनुष्य के हृदय से स्वतन्त्र सुख-दु ख की, स्वर्ग-नरक की, कोई सत्ता नहीं। जो सुख-दु ख को कुछ नहीं समझते, यदि वे कहीं हो भी तो समझना चाहिए कि उनके पास हृदय नहीं है; वे दिलवाले नहीं—

"स्वर्ग और नरक। उनका भेद, सौन्दर्य और कुरूपता,

इनको तो वे ही समझ सकते हैं जिनके वक्ष स्थल में एक दिल—चाहे वह अधजला, झुलसा या टूटा हुआ ही क्यो न हो—धड़कता हो। उस स्वर्ग को, उस नरक को, दिलवालो ने ही तो बसाया। यह दुनिया, इसके बन्धन, सुख और दुःख . ...ये सब भी तो दिलदारो के ही आसरे हैं।"

"अनन्त यौवन, चिर सुख तथा मस्ती इन सब का निर्माण करके दिल ने उस स्वर्ग की नींव डाली थी। परन्तु साथ ही असतोष तथा दुःख का निर्माण भी तो दिल के ही हाथो हुआ था।"

सुख के साथ दुःख भी लुका-छिपा लगा रहता है और कभी-न-कभी प्रकट हो कर उस सुख का अन्त कर देता है—

"दिलवालो के स्वर्ग मे नरक का विष फैला। अनन्तयौवना विषकन्या भी होती है। उसका सहवास करके कौन चिरजीवी हुआ है? सुख को दुःख के भूत ने सताया। मस्ती और उन्माद को क्षयरूपी राजरोग लगा।"

जब संसार में कोई वस्तु स्थायी नहीं तो सुख-दशा कैसे स्थायी रह सकती है? जिसे कभी पूर्ण सुख-समृद्धि प्राप्त थी उसके लिए केवल उस सुख-दशा का अभाव ही दुःख स्वरूप होगा। उसे सामान्य दशा ही दुःख की दशा प्रतीत होगी। जो राजा रह चुका है उसकी स्थिति यदि एक सम्पन्न गृहस्थी की सी हो जायगी तो उसे वह दुःख की दशा ही मानेगा। सुख की यह सापेक्षता समष्टि रूप में दुःख की अनुभूति की अधिकता बनाए रहती है किसी एक व्यक्ति के जीवन में भी, एक कुल या वंश की परंपरा में भी। इसी से यह संसार दुःखमय कहा जाता है।

इस दुःखमय संसार में सुख की इच्छा और प्रयत्न प्राणियो की विशेषता है। यह विशेषता मनुष्य में सबसे अधिक रूपों में विकसित हुई है। मनुष्य की सुखेच्छा कितनी प्रबल, कितनी शक्तिशालिनी निकली! न जाने कब से यह प्रकृति को काटती-छाँटती, ससार

का कायापलट करती चली आ रही है। वह शायद अनन्त है, अनन्त का प्रतीक है। वह इस संसार में न समा सकी तब कल्पना को साथ लेकर उसने कहीं बहुत दूर स्वर्ग की रचना की—

"अमरत्व की भावना ही मनुष्य के जीवन को सौन्दर्य तथा माधुर्य से पूर्ण बनाती है। यह भौतिक स्वर्ग या उस पार का वह वहिश्त, एक ही भावना, चिर सुख की इच्छा ही उनमे पाई जाती है।"

इस चिर सुख के लिए मनुष्य जीवन भर लगातार प्रयत्न करता रहता है; अनेक प्रकार के दुःख, अनेक प्रकार के कष्ट उठाता रहता है। इस दुःख और कष्ट की परपरा के बीच में सुख की जो थोडी सी झलक मिल जाती है वह उसको ललचाते रहने भर के लिए होती है, पर उसी को वह सुख मान लेता है—

"स्वर्ग-सुख, सुख-इच्छा का भावनापूर्ण पुज, वह तो मनुष्य की कठिनाइयो को, सुख तक पहुँचने के लिए उठाए गए कष्टो को देख कर हँस देता है, और मनुष्य उसी कुटिल हँसी से ही मुग्ध होकर स्वर्ग-प्राप्ति का अनुभव करता है।"

उत्तरोत्तर सुख की इच्छा यदि मनुष्य के हृदय में घर न किए हो तो शायद उसे दु ख के इतने अधिक और इतने कडे धक्के न सहने पडें। जिसे ससार अत्यन्त समृद्धिशाली, अत्यन्त सुखी समझता है उसके हृदय पर कितनी चोटें पडी हैं कोई जानता है ? वाहर से देखने वालो को अकवर के जीवन में शान्ति और सफलता ही दिखाई पडती है। पर हमारे भावुक लेखक की दृष्टि जव फतेहपुर सीकरी के लाल-लाल पत्थरो के भीतर घुसी तव वहाँ अकवर के हृदय के टुकडे मिले—

"अपनी आशाओ और कामनाओ को निष्ठुर ससार द्वारा कुचले जाते देख कर अकवर रो पडा। उसका सजीव कोमल हृदय फट कर टुकडे टुकडे हो गया। वे टुकडे सारे भग्न स्वप्नलोक मे विखर

गए, निर्जीव होकर पथरा गए। सीकरी के लाल लाल खण्डहर अकबर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकड़े है।"

चतुर्वर्ग में इसी सुख का नाम ही 'काम' है। यद्यपि देखने में 'अर्थ' और 'काम' अलग अलग दिखाई पड़ते है, पर सच पूछिए तो 'अर्थ' 'काम' का ही एक साधन ठहरता है, साध्य रहता है 'काम' या सुख ही। अर्थसंचय, आयोजन और तैयारी की भूमि है; काम भोग-भूमि है। मनुष्य कभी अर्थ-भूमि पर रहता है, कभी काम-भूमि पर। अर्थ-साधना और काम-साधना के बीच जीवन बांटता हुआ वह चला चलता है। दोनो के स्वरूप "दोनों ध्रुवो की नाई विभिन्न है"। इन दोनों में अच्छा सामंजस्य रखना सफलता के मार्ग पर चलना है। जो अनन्य भाव से अर्थ-साधना में ही लीन रहेगा वह हृदय खो देगा, जो आँख मूँद कर काम-साधना में ही लिप्त रहेगा वह किसी अर्थ का न रहेगा। अकबर ने किस प्रकार दोनो का मेल किया था, देखिए—

"स्वप्नलोक के स्वप्नागार मे पड़ा अकबर साम्राज्य-सचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य-कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।"

अकबर को अपना साम्राज्य दृढ करने के लिए बहुत कष्ट उठाने पडे थे, बड़ी तपस्या करनी पड़ी थी, पर उसके हृदय की वासनाएँ मारी नहीं गई थीं—

"प्रारम्भिक दिनो की तपस्या उसकी उमड़ती हुई उमगो को नही दबा सकी थी। विलास-वासना की ज्वाला अब भी अकबर के दिल मे जल रही थी, केवल उसके ऊपरी सतह पर सयम की राख जम गई थी।"

गंभीर चिंतन से उपलब्ध जीवन के तथ्य सामने रख कर जब कल्पना मूर्त्त विधान में और हृदय भाव-संचार में प्रवृत्त होते है तभी मार्मिक प्रभाव उत्पन्न होता है। 'शेष स्मृतियां' इस प्रकार के अनेक

मार्मिक तथ्य हमारे सामने लाती है। मुमताजमहल बेगम शाहजहाँ को इस ससार में छोड कर चली गई। उसका भू-विख्यात मकबरा भी बन गया। शाहजहाँ के सारे जीवन पर उदासी छाई रही। पर शोक की छाया मनुष्य की सुख-लिप्सा को सब दिन के लिए दबा दे, ऐसा बहुत कम होता है। कोई प्रिय वस्तु चली जाती है। उसके अभाव की अन्धकारमयी अनुभूति सारा अन्त.प्रदेश छेंक लेती है और उसमें किसी प्रकार की सुख-कामना के लिए जगह नही रह जाती। पर धीरे-धीरे वह भावना सिमटने लगती है और नई कामनाओ के लिए अवकाश होने लगता है। मनुष्य अपना मन लगाने के लिए कोई सहारा ढूँढने लगता है क्योकि मन बिना कहीं लगे रह नहीं सकता। शाहजहाँ ने महत्त्व-प्रदर्शन और सौंदर्य-दर्शन की कामना को खोद खोद कर जगाया और उसकी तुष्टि की भीख कला से माँगी। दिल्ली उसके हृदय के समान ही उजडी पडी थी। दिल्ली फिर से बसा कर उसने अपना हृदय फिर से बसाया। मन-ही-मन दिल्ली को शाह-जहाँबाद बना कर वह उसकी रूप-रेखा खीचने लगा। नर-प्रकृति के एक विशेष स्वरूप को सामने लाने वाली शाहजहाँ की इस मानसिक दशा की ओर महाराजकुमार ने इस प्रकार दृष्टिपात किया है—

"एक बार मुँह से लगी नही छूटती। एक बार स्वप्न देखने की सुख-स्वप्न-लोक मे विचरने की लत पडने पर उसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। प्रेम-मदिरा को मिट्टी मे मिला कर शाहजहाँ पुन मस्ती लाने को लालायित हो रहा था, अपने जीवन-सर्वस्व को खोकर जीवन का कोई दूसरा आसरा ढूँढ रहा था। सुन्दर सुकोमल अनारकली को कुचल देने वाली कठोर-हृदया राज्यश्री शाहजहाँ की सहायक हुई। राज्यश्री ने सम्राट् को प्रेमलोक से भुलावा देकर ससार के स्वर्ग की ओर आकृष्ट किया।"

किसी को दु ख से सतप्त देख बहुत-से ज्ञानी बनने वाले इस जीवन की क्षणभगुरता का, सयोग-वियोग की नि सारता आदि का

उपदेश देने लग जाते है। इस प्रकार के उपदेश शुष्क प्रथानुसरण या अभिनय के अतिरिक्त और कुछ नही जान पड़ते। दु:खी मनुष्य के हृदय पर इनका कोई प्रभाव नहीं; कभी-कभी तो ये उसे और भी क्षुब्ध कर देते है—

"दार्शनिक कहते है, जीवन एक बुदबुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी बताते है कि इस जीवन का सग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह मे सयोग से साथ बहते हुए लकडी के टुकडो के साथ तथा विलग होने की कथा है। परन्तु क्या ये विचार एक सतप्त हृदय को शान्त कर सकते है? . . . . सासारिक जीवन की व्यथाओ से दूर बैठा हुआ जीवन-सग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण सग्राम मे युद्ध करते हुए घटनाओ के घोर थपेडे खाते हुए हृदयो की क्या दशा होती है, यह एक भुक्त-भोगी ही बता सकता है।"

इसी प्रकार जीवन के और तथ्य भी हमारे सामने आते है। अपने प्राण या प्रभुत्व-ऐश्वर्य की रक्षा की बुद्धि या सामर्थ्य न रख कर भी किसी के प्रेम के सहारे मनुष्य किस प्रकार अपना जीवन पार करता जाता है इसका एक सच्चा उदाहरण जहांगीर और नूरजहां के प्रसंग में मिलता है। जहांगीर तो नूरजहां को पाकर 'मोहमयी प्रमाद-मदिरा' पीकर पड़ गया, नूरजहां ही उसके साम्राज्य को और समय समय पर उसको भी सँभालती रही—

"जहांगीर भी आंखे बन्द किए पडा पडा सुरा, सुन्दरी तथा सगीत के स्वप्नलोक में विचर रहा था। किन्तु जब एक झोका आया और जब तूफान का अन्त होने लगा, तब जहांगीर ने आंखे कुछ खोली, देखा कि उसको लिये नूरजहां रावलपिडी के पास भागी चली जा रही थी, खुर्रम और महाबत खां झेलम के इस पार डेरा डाले पड़े थे।"

जीवन के एक तथ्य का मूर्त्त और सजीव चित्र खड़ा करने के लिए सहृदय लेखक ने कैसा सटीक और स्वाभाविक व्यापार चुना है। "जहाँगीर ने आँखे कुछ खोली, देखा कि उसको लिये नूरजहाँ भागी चली जा रही थी।" लेकर भागने का व्यापार सँभालने और वचाने का प्राकृतिक और सनातन रूप सामने खडा कर देता है।

यह बात नहीं है कि महाराजकुमार की दृष्टि अपने समकक्ष जीवन पर ही, शक्तिशाली सम्राटो के ऐश्वर्य, विभूति, उत्थान-पतन आदि पर ही पड़ी हो, सामान्य जनता के सुख-दुःख की ओर न मुडी हो। आपके भीतर जो शुद्ध मनुष्यता की निर्मल ज्योति है उसी के उजाले में आपने सम्राटो के जीवन को भी देखा है। यद्यपि जिन पाँचो स्थानो को आपने सामने रखा है उनका सम्बन्ध इतिहास-प्रसिद्ध शासको से है, फिर भी उनके अतीत ऐश्वर्य-मद का स्मरण करते समय आपने उन बेचारो का भी स्मरण किया है जिनके जीवन का सारा रस निचोड़ कर वह मद का प्याला भरा गया था---

"वैभव से विहीन सीकरी के वे खँडहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते है। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हे उन करोडो मनुष्यो की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासको, धनिको तथा विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थी। आज भी उन भव्य खँडहरो मे उन पीडितो का रुदन सुनाई देता है।"

स्मृति-स्वरूपा कल्पना कवियो और लेखको को या तो मुख्यत अतीत के रूप-चित्रण में प्रवृत्त करती है अथवा कुछ मार्मिक रूपो को ले कर भावो की प्रचुर और प्रगल्भ व्यजना में। दोनो का अपना अलग अलग मूल्य है। मेरी समझ में महाराजकुमार की प्रतिभा दूसरे टर्रे की है। आपके प्रबन्धो में मानसिक दशाओ का भावो के उद्गार का ही मुख्य स्थान है, वस्तु-चित्रण का गौण या अल्प।

भावुक लेखक की दृष्टि किसी अतीत काल-खंड की संस्कृति के स्वरूप की ओर नहीं है; मानव-जीवन के नित्य और सामान्य स्वरूप की ओर है। इसका आभास मोती मसजिद के इस उल्लेख में कुछ मिलता है—

"उस निर्जन स्थान मे एकाध व्यक्ति को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि उन दिनो यहाँ आने वाले व्यक्तियो में से किसी की आत्मा अपनी पुरानी स्मृतियो के बन्धन मे पड़ कर खिची चली आई है।"

यह भावना अत्यन्त स्वाभाविक है। पर संस्कृति के स्वरूप पर विशेष दृष्टि रखने वाला भावुक उपर्युक्त वाक्य में आए हुए "एकाध व्यक्ति" के पहले 'पुरानी चाल-ढाल-वाला' विशेषण अवश्य जोड़ता।

वस्तु-चित्रण की ओर यदि महाराजकुमार का ध्यान होता तो दरबार की सजावट, दरबारियो की पोशाक, उनके खंभे टेक कर खडे होने, उनकी ताजीम आदि का, इसी प्रकार विलास-भवन में बेगमो, बाँदियो और खोजो की वेशभूषा, ईरान और दमिश्क के रंगबिरंगे कालीनों और बड़े बड़े फानूसो और शमःदानो का दृश्य अवश्य खड़ा करते। पर दृश्य-विधान उनका उद्देश्य नहीं जान पडता। इसका अभिप्राय यह नहीं कि विस्तृत वस्तु-चित्रण है ही नही। यह कहा जा चुका है कि सुख-दु.ख का वैषम्य दिखाने के लिए महाराजकुमार ने भोग-पक्ष ही अधिकतर लिया है। अत. जहाँ सुखमय आमोद-प्रमोद, शोभा, सौन्दर्य, सजावट आदि के प्राचुर्य की भावना उत्पन्न करना इष्ट हुआ है वहाँ विस्तृत चित्रण भी अनूठेपन के साथ मिलता है, जैसे दिल्ली की किलेवाली नहर की जल-क्रीड़ा के वर्णन में—

"उस स्वर्गंगा मे, उस नहर-इ-बहिश्त मे, खेल करती थी उस स्वर्ग की अत्यनुपम सुन्दरियाँ। उन श्वेत पत्थरो पर अपनी सुगन्ध फैलाता हुआ वह जल अठखेलियाँ करता, कलकल ध्वनि में चिर संगीत सुनाता चला जाता था, और वे अप्सराएँ अपने

श्वेतागो पर रगबिरगे वस्त्र लपेटे, नूपुर पहने, अपने ही ध्यान मे मस्त झुन-झुन की आवाज करती हुई जल-क्रीडा करती थी।
और जब वह हम्माम बसता था, स्वर्ग-निवासी जब उस स्वर्गगगा मे नहाने के लिए आते थे, और अनेकानेक प्रकार के स्नेह से पूर्ण चिराग उस हम्माम को उज्ज्वलित करते थे, रगबिरगे सुगन्धित जलो के फव्वारे जब छूटते थे, तब वहाँ उस स्वर्ग मे सौन्दर्य बिखरा पडता था, सुख छलकता था, उल्लास की बाढ आ जाती थी, मस्ती का एकछत्र शासन होता था और मादकता का उलग नर्त्तन।"

यह कह आए है कि मानसिक दशाओ के चित्रण और उमडते भावो की अनूठी व्यजना ही इस पुस्तक की मुख्य विशेषता है। मानसिक दशाएँ है अकबर, शाहजहाँ ऐसे ऐतिहासिक पात्रो की, उमडते हुए भाव है लेखक के अपने। सीकरी के प्रसिद्ध फकीर सलीम-शाह से मिलने पर अकबर का राज-तेज तप के तेज के सामने किस प्रकार फीका पडा और उसकी वृत्ति किस प्रकार बहुत दिनो तक कुछ और ही रही, पर फिर ऐश्वर्य-विभूति में लीन हुई इसका बडे सुन्दर ढग से निरूपण है––

"अकबर ने तप और सयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गई। पुन सर्वत्र भौतिकता का अन्धकार छा गया, किन्तु इस बार उसमे आशा की चाँदनी फैली।"

इसी प्रकार मुमताजमहल के देहावसान पर शाहजहाँ की मनोवृत्ति का भी मार्मिक चित्रण है।

अब थोडा महाराजकुमार के वाग्वैशिष्टच को भी समझना चाहिए। उनके निबन्ध भावात्मक और कल्पनात्मक है। कल्पना से मेरा अभिप्राय वस्तु की कल्पना या प्रस्तुत की कल्पना नहीं, प्रस्तुत के वर्णन मे अत्यन्त उद्बोधक और व्यजक अप्रस्तुतो की कल्पना है। इसमे सन्देह नहीं कि अप्रस्तुत विधान अत्यन्त कलापूर्ण, आकर्षक

और मर्मस्पर्शी है। वाह्य परिस्थितियों या वस्तुओं का संश्लिष्ट चित्रण तो इन भावप्रधान निबन्धो का लक्ष्य नहीं है, पर उन मूर्त्त वस्तुओ के सौन्दर्य, माधुर्य, दीप्ति इत्यादि की भावना जगाना उनके भाव-विधान के अन्तर्गत है। अतः इस प्रकार की भावना जगाने के लिए अप्रस्तुतों के आरोप और अध्यवसान का, साम्यमूलक अलंकार-पद्धति का सहारा लिया गया है। जैसे नगरी को कई जगह प्रेयसी सुन्दरी का रूपक दिया गया है। शाहजहाँ की वसाई दिल्ली "बढ़ते हुए प्रौढ साम्राज्य की नवीन प्रेयसी" और अन्यत्र "बहुभर्तृका पाचाली" कही गई है। लाल किले का संकेत बड़े ही अनूठे ढंग से इस प्रकार किया गया है—

"अपने नये प्रेमी को स्थान देने के लिए उसने एक नवीन हृदय की रचना की।"

कहीं कहीं प्रस्तुत और अप्रस्तुत का एक साथ बहुत ही सुन्दर समन्वय है, जैसे—

"वह लाल दीवार और उस पर वे श्वेत स्फटिक महल—उस लाल लाल सेज पर लेटी हुई वह श्वेतागी।"

जिन दृश्यो की ओर संकेत किया गया है वे भावना से पूर्णतया रंजित होने पर भी लेखक के सूक्ष्म निरीक्षण का पता देते है, यह बताते है कि उनमें परिस्थिति के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अंगो के साक्षात्कार की पूर्ण प्रतिभा है। शाहजहाँ की नई दिल्ली पूरी सजधज से उसके प्रथम स्वागत के लिए खड़ी है। वह जमुना के उस पार से आ रहा है। लाल दीवार के ऊपर श्वेत प्रासाद उठे दिखाई पड़ रहे है। नाव धीरे-धीरे निकट पहुँचती है। अब श्वेत प्रासाद दृष्टि से ओझल हो जाते है; लाल दीवार ही सामने दिखाई पड रही है। यह दृश्य भावना से रंजित होकर इस रूप में सामने आता है—

"श्वेतागी—अपने प्रियतम को आते देख सकुचा गई, उसने लज्जावश अपना मुख अपने अंचल में छिपा लिया।"

दिल्ली के महलो में यमुना का जल लाकर नहरें क्या निकाली गईं मानो "यमुना ने अपना दिल चीर कर उस स्वर्ग को सीचा, उस कृष्णवर्णा ने अपने हार्दिक भावो तथा शुद्ध प्रेम का मीठा चमचमाता जीवन उस स्वर्ग मे वहाया।"

प्रस्तुत पुस्तक में अध्यवसान-पद्धति पर बहुत जगह घटनाओ की ओर भी सकेत है, जिन्हें इतिहास के ब्योरो से अपरिचित जल्दी नहीं समझ सकते। मुग़ल बादशाहो के इतिवृत्त से परिचित पाठक ही महाराजकुमार के निबन्धो का पूरा आनन्द उठा सकते है। जो जहाँगीर और अनारकली के दु खपूर्ण प्रेम-प्रसग को नहीं जानते वे 'तीन कब्रें' के बहुत से अश की भावात्मकता हृदयगम नही कर सकते। "उजडा स्वर्ग" में, जो महाराजकुमार की सबसे प्रौढ, मार्मिक और कलापूर्ण रचना है, ऐसे कई स्थल है जहाँ घटनाओ का उल्लेख साम्यमूलक गूढ सकेतों द्वारा ही है, जैसे—

"आलम का शाह पालम तक शासन करता था। जब इस लोक मे देखने योग्य कुछ न रहा तब वह प्रज्ञाचक्षु हो गया। परतु वारागनाओ को दिव्य दृष्टि से क्या काम? उन्होंने अन्धो का कब साथ दिया है? अन्धे कब तक अन्धी पर शासन कर सके है? दुर्भाग्य रूपी दुर्दिन के उस अँधियारे मे, नितान्त अन्धेपन की उस अनन्त रात्रि मे, रात्रि का राजा उस अधी को ले उडा और वह पहुँची वहाँ जहाँ समुद्र के बीच शेपशायी सुखपूर्ण विश्राम कर रहे थे।"

अन्धा शाहआलम किस प्रकार दिल्ली की सल्तनत न सँभाल सका और बहुत दिनो तक मराठो की देख-रेख में रह कर अत में सात समुद्र पार के अँगरेजो की शरण में गया जिससे उसकी राजशक्ति उससे विमुख होकर वस्तुत अँगरेजो के हाथ में चली गई इसी का सकेत ऊपर के उद्धरण में है।

भावुक लेखक ने हुमायूँ के मक़बरे को स्वर्ग की बग़ल का नरक कहा है, जिसने एक दूसरे से दिल का दर्द सुनाने के लिए—

"न जाने कितने दुःखी मुगल शासकों को अपनी ओर आकर्षित किया। दुःख का वह अपार सागर, निराशा की आहों का वह तपा-तपाया हुआ कुंड, आँसुओं का वह भीषण प्रवाह, टूटे हुए दिलों की वह दर्दभरी चीख! ..वे टूटे दिल एक साथ बैठ कर रोते हैं, रो रो कर उन्होंने कई बार उन रक्तरंजित पत्थरों को धो डाला पर हृदय का वह रुधिर बहुत गहरा रंग लाया है, उनके धोये नहीं धुलता।"

जो दारा की गति से परिचित हैं, जो जानते हैं कि सन् १८५७ के बलवे में शाही खानदान के लोगों ने उच्छिन्न होने के पहले उसी मक़बरे में पनाह ली थी, वे ही ऊपर की पंक्तियों का पूरा प्रभाव ग्रहण कर सकते हैं।

दिल्ली का क़िला हमारे भावुक महाराजकुमार को 'उजड़ा स्वर्ग' दिखाई पड़ा है। उसने उनके हृदय में न जाने कितनी करुण स्मृतियाँ जगाई हैं। दिल्ली के नाम-मात्र के अन्तिम बादशाह बहादुर-शाह ने अपना क्षोभपूर्ण दीन जीवन उसी किले में रोते रोते बिताया था। इस भौतिक जगत् में सुख का कहीं ठिकाना न पाकर वे अपना नाम 'ज़फर' रख कर कविता के कल्पनालोक में भागा करते थे। पर वहाँ भी उनका रोना न छूटा; वहाँ भी बुरों की जान को वे रोते थे—'ऐसे रोए बुरों की जाँ को हम, रोते रोते उलट गईं आँखें'। उनके सामने ज़ौक़ और ग़ालिब ऐसे उस्ताद अपने कलाम सुनाते थे। शाहज़ादे की शादी के मौके पर ग़ालिब ने एक 'सेहरा' लिखा था जिसके किसी वाक्य में ज़ौक ने अपने ऊपर आक्षेप समझ कर जवाब दिया था। पर शायरी की इस चहल-पहल से बहादुरशाह के आँसू रुकने वाले नहीं थे। बहादुरशाह के जीवन के अन्तिम दिनों की ओर लेखक ने इस प्रकार गूढ़ संकेत किया है—

"वह उजडा स्वर्ग भी काँप उठा अपने उस शूल से। निरन्तर रक्त के आँसू बहाने वाले उस नासूर को निकाल बाहर करने की उस स्वर्ग ने सोची। परन्तु उफ! वह नासूर स्वर्ग के दिल मे ही तो था, उसको निकाल बाहर करने मे स्वर्ग ने अपने हृदय को फेक दिया। और अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध स्वर्ग जब दर्द के मारे तडप उठा, तब भूडोल हुआ, अन्धड उठा, प्रलय का दृश्य प्रत्यक्ष देख पडा। पुरानी सत्ता का भवन ढह गया, समय-रूपी पृथ्वी फट गई और मध्ययुग उसके अनन्त गर्भ मे सर्वदा के लिए विलीन हो गया।"

इस हृदयद्रावक रूपजाल के भीतर कौशलपूर्वक जो घटनाएँ छिपी है उनकी ओर पाठक का ध्यान जल्दी नहीं जा सकता। वह यह जल्दी नही समझ सकता कि उजडे स्वर्ग का कँपना है सन् १८५७ की हलचल का पूरब से बढते बढते दिल्ली तक पहुँचना, नासूर है बहादुरशाह, नासूर का निकलना है बहादुरशाह का लाल किला छोडना और भूडोल और अन्धड है दिल्ली पर कब्जा करने वाले बलवाइयो के साथ अँगरेजो का घोर युद्ध।

सुख-दुःख की दशाओ का प्रत्यक्षीकरण भी इसी रमणीय अलकृत पद्धति पर हुआ है। शाहजहाँ ने यद्यपि अपनी प्रौढ़ावस्था में नई दिल्ली बसाई पर क़िले के भीतर मानो वह स्वर्ग का एक खड ही उतार लाया। वह विभूति, वह शोभा, वह सजावट अन्यन्त्र कहाँ? उस स्वर्गधाम के प्रमत्त विलास और उन्मत्त उल्लास की यह झलक देखिए--

"पत्थरो तक पर मस्ती छा जाती थी, वे भी मत्त उत्तप्त हो जाते थे और उन पत्थरो तक मे सुगन्धित जल के फव्वारे छूटने लगते थे। उस स्वर्ग की वह राह! विलासिता थिरकती थी उस राह मे, मादकता की लाली वहाँ सर्वत्र फैली हुई थी और चिर सगीन दुःख की भावना तक को धक्के देता था। दुःख-दुःख, उसे तो नौबत के डके की चोट, मुर्दे की खाल की ध्वनि ही निकाल

बाहर करने को पर्याप्त थी। बाँस की वे बाँसुरियाँ—अपना दिल तोड तोड़ कर अपने वक्षस्थल को छिदवा कर भी सुख का अनुभव करती थी। उन मदमस्त मतवालो के अधरो का चुम्बन करने को लालायित बाँस के उन टुकड़ो की आहो मे भी सुमधुर सुखसगीत ही निकलता था। मुर्दे भी उस स्वर्ग मे पहुँच कर भूल गए अपनी मृत्यु-पीडा, उल्लास के मारे फूल कर ढोल हो गए, और उनके भी रोम रोम से यही आवाज आती थी 'यही है, यही है'।"[1]

पतन-काल के ध्वंसकारी आघातो, विपत्ति के झोको और प्रलयंकर प्रवाहो के उपरान्त सम्पत्ति के जीर्ण, शीर्ण और जर्जर अवशेषो के बीच मरती हुई कामनाओं, उठती हुई वेदनाओं, उमड़ते हुए आंसुओ, दहकती हुई आहो तथा नैराश्यपूर्ण बेवसी, दीनता और उदासी का एक लोक ही अपनी प्रतिभा के वल से महाराजकुमार ने खड़ा कर दिया है। उपर्युक्त स्वर्ग जब उजड़ा है तब इस करुणलोक में परिणत हुआ है। जहाँ शाहजहाँ ने वह स्वर्ग वसाया था वहीं अन्त में उसके घराने भर के लिए एक छोटा-सा नरक तैयार हो गया जिसके बाहर वह कभी निकल न सका। इस नरक को अपने गर्भ के भीतर रख कर स्वर्ग अपना वह रूप-रंग कब तक बनाए रख सकता था? शाहजहाँ की दृष्टि जबर्दस्ती हटा दी जाने से और औरंगजेब के भूल कर भी उसकी ओर न जाने से उसका रंग फीका पड गया और धीरे धीरे उड़ने लगा। यह तो हुई बाहर की दशा। उस स्वर्ग के अन्तर्जगत् में भी मानस-प्रदेश में भी कई खंड ऐसे थे जो एक दम रूखे-सूखे थे, जिनमें सरसता का नाम न था। बहुत-से प्राणी अत्यन्त नीरस जीवन व्यतीत करते थे—

"अनेको ने दिल नामक वस्तु के अस्तित्व को भुला दिया था। दिल—हृदय—उसके नाम पर तो उनके पास दो चुटकी राख थी।"

---

[1]अगर फिरदौस बर रूए ज़मीनस्त। हमीनस्तो हमीनस्तो हमीनस्त।

मुग़ल बादशाहों के अन्तःपुर में शाहज़ादियों का ऐसा ही दबाया हुआ जीवन था। न उनमें यौवन का उल्लास उठने पाता था, न प्रेम का आलंबन खड़ा होने पाता था। विवाह भला उनका किसके साथ हो सकता था? जहानआरा के अंतिम श्वासों से आवाज़ आती थी—

"नही, नही! मेरी कब्र पर पत्थर न रखना। इस उत्तप्त छाती पर रह कर उस बेचारे पत्थर की क्या दशा होगी?"

उन शाहज़ादियों की क़ब्रो के भीतर पड़े कंकाल सुख को एक दुराशा मात्र बता रहे हैं। महाराजकुमार को इन कंकालो के गड़े दुःख जगत् के सारे वर्त्तमान दुःखो के बीज जान पड़े हैं। उन्होने मनुष्यता के इतिहास में दुःख की एक अखंड परंपरा का साक्षात्कार किया है, तभी वे कहते हैं—

"इन ककालो के दु ख से ही विश्व-वेदना का उद्भव होता है और उन्ही के निश्वासो से ससार की दु खमयी भावना उद्भूत होती है।"

औरङ्गज़ेब के पीछे मुग़ल सल्तनत के ज़वाल का परवाना लिए मुहम्मदशाह और शाहआलम ऐसे बादशाह आते हैं। मुहम्मदशाह ने उस स्वर्ग में पुराना रग लाने का प्रयत्न किया और 'रंगीले' कहलाए। एकाएक नादिरशाह टूट पड़ा और स्वर्ग को लूट कर तथा दिल्ली की पूरी दुर्दशा करके चल दिया। स्वर्ग के निवासियो की क्या दशा हुई?—

"उनकी सत्ता को जगली अफगानो ने ठुकराया, उनके ताज और तख्त को रौद कर ईरान के गडरिये ने दिल्लीश्वर की प्रजा का भेड-बकरियो की तरह सहार किया। और यह सब देख कर भी स्वर्ग की आतमा अविचलित रही।"

मुहम्मदशाह स्वर्ग-सुख-भोग की वासना मन में जगाते तो रहे पर 'अशक्तो की सत्ता की ऐंठ' स्वर्ग की मरम्मत कहां तक कर

सकती थी। उसका उजड़ना तो आरम्भ हो गया था। आगे चलकर शाहआलम की आँखें यह ध्वंस न देख सकीं, फूट गईं। अब उतने ऊँचे उत्थान का उतना ही गहरा पतन सामने आया।

दिल्ली के किले में दीवान खास के पास के एक द्वार पर एक तराज़ू बना हुआ है जिसे 'अदल का मीज़ान' या न्यायतुला कहते हैं। उस स्वर्ग में अब तक जो सुख उठाया गया था उसका भार अब बहुत हो गया था, सुख का पलड़ा बहुत नीचे झुक गया था। अतः दूसरे पलड़े पर काँटे की तोल उतने ही दु:ख का रखा जाना दैव को आवश्यक प्रतीत हुआ—

"उस स्वर्ग की वह न्यायतुला स्वर्ग के उस महान् भार को न सह सकी। अपनी न्यायतुला कहीं नष्ट न हो जाय इसी विचार से उस महान् अदृष्ट तुलाधारी ने सुख-दुःख का समतोल करने की सोची। स्वर्ग के सुख के सामने तुलने को दुःख का सागर उमड पड़ा।"

दिल्ली के किले के भीतर भर के बादशाह बहादुरशाह किस प्रकार उस सागर में बहे और बर्मा के किनारे जा लगे, यह दुःख भरी कहानी इतिहास के पन्नों में टँकी हुई है। वह घोर अध:पतन, भीषण विप्लव और दारुण दुर्विपाक दिगन्तव्यापी स्वरूप में सामने लाया गया है। इस स्वरूप को खड़ा करने में प्रकृति की सारी ध्वंसकारिणी शक्तियाँ, भूतों के सारे कराल वेग तथा मानसलोक के सारे क्षोभ, सारी व्याकुलता, सारे उद्वेग, सारी विह्वलता और सारी उदासी काम में लाई गई है—

"उफ! स्वर्ग की वह अन्तिम रात! जब स्वर्गीय जीवन अन्तिम साँसें ले रहा था। प्रलय का प्रवाह स्वर्ग के दरवाज़े पर टकरा टकरा कर लौटता था और अधिकाधिक वेग के साथ पुन: आक्रमण करता था। सायँ सायँ करती हुई ठंडी हवा बह रही थी, न जाने कितनों के भाग्य-सितारे टूट-टूट कर गिर रहे थे। दुर्भाग्य

के उस दुर्दिन की अँधेरी अमावस्या की रात उस स्वर्ग में घूमती थी उस स्वर्ग के निर्माताओ की प्रेतात्माएँ। परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग में मुगलो का अन्तिम चिराग जलता रहा।"

बहादुरशाह का लाल क़िला छोड़ना इतिहास की एक अत्यंत मार्मिक घटना है। महाराजकुमार की अध्यवसान-आरोपमयी अलंकृत शैली मार्मिक प्रभाव उत्पन्न करने की कितनी शक्ति रखती है यह जैसे सर्वत्र वैसे ही यहाँ भी दिखाई पड़ता है—

"सूरज निकला। अन्धड बढ रहा था, दुर्दिन के सब लक्षण पूर्णतया दिखाई दे रहे थे, भाग्याकाश दुर्भाग्यरूपी बादलो से छा रहा था, वह दिया, स्वर्गीय स्नेह की वह अन्तिम लौ झिलमिला कर बुझ गई, और तब . उस वश की आशाओ का, उस साम्राज्य के मुट्ठी भर अवशेषो का, अकबर और शाहजहाँ के वशजो की अन्तिम सत्ता का जनाजा उस स्वर्ग से निकला। रो रो कर आसमान ने सर्वत्र आँसू के ओसकण बिखेरे थे, इस कठोर-हृदया पृथ्वी को भी आहो के कुहरे मे राह सूझती न थी। परन्तु . . विपत्तियो का मारा, जीवन-यात्रा का वह थका हुआ पथिक, सितम पर सितम सह कर भी मुगलो की सत्ता तथा उनके अस्तित्व के जनाजे को उठाए, अपने भग्न हृदय को समेटे चला जा रहा था।"

'बेबसी का मजार'—'जीवित समाधि'—बना हुआ बादशाह उसी स्वर्ग के प्रतिवेशी नरक में—हुमायूं के मकबरे में पनाह लेता है। फिर वहां से क़ैद होकर बर्मा जाता है—

"नरक! दुख का वह आगार भी बेबसी के इस मजार को देखकर रो पडा। वही उस नरक मे, अकबर की प्यारी सत्ता पृथ्वी मे समा गई, जहाँगीर की विलासिता बिखर गई, शाहजहाँ का वैभव जल-भुन कर खाक हो गया, औरगज़ेब की कट्टरता मुगलो के रुधिर मे डूब गई और पिछले मुगलो की असमर्थता भी न जाने कहाँ खो गई। लोहा बजा कर दिल्ली पर अधिकार करने

वाले लोहा खडखड़ाते हुए दिल्ली से निकले, लोहा लेकर वे आए थे, लोहा पहने वहाँ से गए।"

मुगल सम्राटों की विपत्ति और नाश की उसी रंगभूमि पर, हुमायूँ के उसी नरक-रूप मकबरे के पास दुःख से जर्जर बहादुरशाह के सामने उनके बेटे और दो पोते ढूँढ़ कर लाए गए और गोली से मार दिए गए। तड़प तड़प कर उस अभागे बुड्ढे के सामने उन्होने प्राण छोड़े—

"दिल्ली के अन्तिम मुगल सम्राट् की एकमात्र आशाएँ रक्त-रजित हो कर पड़ी थी। कुचली जाने पर उनका लोथडा खून से शराबोर खंड खड होकर पड़ा था, और उन भग्नाशाओं के घाव तक मुगलो के उस भीषण दुर्भाग्य पर खून के दो आँसू बहाए बिना न रह सके।.... बहादुर नरक मे भी लुट गया। वहाँ उसने अपने टूटे दिल को भी कुचला जाते देखा, उस हृदय की गम्भीर दरारो की खोज होते देखी, और अपने दिल के उन टुकडो को ससार द्वारा ठुकराया जाते देखा।"

अपने वश का नाश अपनी आँखो के सामने देख कर बहादुरशाह कैद होकर दिल्ली से निकले, हिन्दुस्तान से निकले और बर्मा पहुँचा दिए गए जहाँ मंगोल ढाँचे के पीले रंग के लोग और पीले वस्त्र लपेटे भिक्खु ही भिक्खु दिखाई देते थे। भीतर मरी हुई आशा की पीली मुर्दनी छाई हुई थी; बाहर भी सब पीला ही पीला दिखाई देता था। अन्तर्जगत् और बाह्य जगत् का कैसा अनूठा सामंजस्य नीचे दिखाया गया है—

"अब तो अपनी आशा के एकमात्र सहारे को भी अपनी खुली आँखो नष्ट होते देख कर उसे आशा की सूरत तो क्या उनके नाम तक से घृणा हो गई।... .इस भारत से उसने मुख मोड लिया। उसे अब निराशा का पीलिया हो गया, और तब वह पहुँचा उस देश मे जहाँ सब कुछ पीला ही पीला देख पड़ता था। नर-नारी भी

पीत वर्ण की चादर ही ओढे नही फिरते थे किन्तु स्वय भी उस पीत वर्ण मे ही शराबोर थे। निराशा के उस पुतले ने निराशापूर्ण देश की उस एकान्त अँधेरी सुनसान रात्रि मे ही अन्तिम साँसे तोडी।"

उस स्वर्ग की—लाल क़िले के भीतर के महलो की—सम्राटो की प्रेयसी उस दिल्ली की क्या दशा हुई क्या यह भी बताने की बात है? वह ध्वस्त हो गया। जमुना भी क़िले को छोड़ कर हट गई। सगमरमर के महलो के भीतर जमुना का जो जल बहा करता था वह भी बंद हो गया। नहरें सूखी पड़ी है—

"स्वर्ग उजड गया और दुर्भाग्य के उस अन्धड ने उसके टूटे दिल को न जाने कहाँ फेक दिया। उस चमन का वह बुलबुल रो चीख़ कर, तडफडा कर न जाने कहाँ उड गया।" "यमुना के प्रवाह का मार्ग भी बदला। उस स्वर्ग को, स्वर्ग के उस शव को, छोड कर वह चल दी, और अपने इस वियोग पर वह जी भर कर रोई, किन्तु उसके उन आँसुओ को, स्वर्ग के प्रति उसके इस स्नेह को स्वर्ग के दुर्भाग्य ने सुखा दिया, उस नहर-इ-बहिश्त ने भी स्वर्ग की धमनियो मे बहना छोड दिया। स्वर्ग भी खड खड हो गया, उसकी भाग्य-लक्ष्मी वही उन्ही खण्डहरो मे दब कर मर गई।"

अब तो किले की दीवारो के भीतर उस स्वर्ग का खंडहर ही रह गया है जिसके बीच खडे दर्शक का हृदय उसकी अतीव सजीवता, सुषमा और सरसता की स्मृति-स्वरूपा कल्पना में प्रवृत्त होता है—

"भारतीय सम्राटो की असर्यम्पश्या प्रेयसी का वह अस्थिपजर दर्शको के लिए देखने की एक वस्तु हो गया है। दो आने मे ही हो जाती है राज्यश्री की उस लाडली, शाहजहाँ की नवोढा के उस सुकोमल शरीर के रहे-सहे अवशेषो की सैर! उस उजडे स्वर्ग को, उस अस्थिपजर को देख कर ससार आश्चर्य-चकित हो जाता है, श्वेत हड्डियो के उन टुकडो मे सुकोमलता का अनुभव करता है, उन सडे-गले, रहे-सहे, लाल-लाल मासपिडो मे उसे मस्ती

की मादक गन्ध आती जान पड़ती है। उस शान्त निस्तब्धता में उस मृत स्वर्ग के दिल की धडकन सुनने का वह प्रयत्न करता है, उस जीवन-रहित स्थान मे रस की सरसता का स्वाद उसे आता है, उस अँधेरे खँडहर में कोहनूर की ज्योति फैली हुई जान पडती है।"

ध्यान देने की बात यह है कि महाराजकुमार ने आरोप और अध्यवसान की अलंकृत पद्धति का कितना प्रगल्भ और प्रचुर प्रयोग किया है फिर भी उसके द्वारा सर्वत्र अनुभूति के तीव्र और मर्मस्पर्शी स्वरूप का ही उद्घाटन होता है। मार्मिकता का साथ छोड़ कर वह अलग ही अपना वैचित्र्य दिखाती कहीं नहीं जान पड़ती। कहीं कहीं बहुत ही अनूठी सूझ, बहुत ही सुन्दर उद्भावना है, पर वह कलाबाजी नहीं है, भाव-प्रेरित प्रतीति की झलक है।

आगरे और दिल्ली के कुछ उजड़े हुए महल अभी खड़े हैं। जब उगते हुए सूर्य की अरुण प्रभा उन पर पड़ती है या निर्मल चांदनी उनमें छिटकती है तब मानो उन जगमगाते दिनो की, प्रेम के उस उद्दीपित जीवन की स्मृति उनमें जग पड़ती है। इसी प्रकार सूर्य जब अपना प्रखर प्रकाश उन पर डालता है तब मानो उनके पूर्व प्रताप की स्मृति अपना स्वरूप झलकाती है—

"प्रात काल बाल सूर्य की आशामयी किरणे जब उस रक्तवर्ण किले पर गिरती है तब वह चौक उठता है। उस स्वर्ण प्रभात में वह भूल जाता है कि अब उसके उन गौरवपूर्ण दिनो का अन्त हो गया है, और एक बार पुन पूर्णतया कान्तियुक्त हो जाता है।".. "हड्डियो का वह ढेर! वे श्वेत पत्थर! . ..जब सूरज चमकता है और उस कंकाल की हड्डी-हड्डी को करो से छूकर अपने प्रकाश द्वारा आलोकित करता है, तब वे पत्थर अपने पुराने प्रताप को याद कर तपतपा जाते है।. . रात्रि में चाँद को देखकर उन्हें सुध आ जाती है अपने उस प्यारे प्रेमी की, और मिलन की सुखद घड़ियो की स्मृतियाँ पुन उठ खड़ी होती है।"

शाहजहाँ अपनी नई बसाई प्यारी दिल्ली में प्रवेश करने जमुना के उस पार से आ रहा है। जमुना के काले जल में क़िले की लाल दीवार और उसके ऊपर उठे हुए संगमरमर के सफेद महलो की परछाहीं पड रही है। इन तीनो रंगो में हमारे भावुक महाराजकुमार को मुग़ल साम्राज्य की या दिल्ली की तीनो दशाओ का आभास इस प्रकार दिखाई पड़ता है—

"एकबारगी यमुना त्रिकाल-सम्वन्धी दृश्यो की 'त्रिवेणी वन गई, उत्थान की लाली, प्रताप का उजेला तथा अवसान की कालिमा, तीनो का सम्मिलित प्रतिविम्व उस महानदी मे देख पडता था।"

जीवन-दशा के चित्रण के लिए कई स्थलो पर प्रकृति के नाना रूपो को लेकर वड़ी सुन्दर हेतूत्प्रेक्षाएँ मिलती है। जहाँगीर और अनारकली के प्रेम का दु:खपूर्ण अन्त हुआ यह इतिहास बतलाता है। वह विशाल और उज्ज्वल प्रेम मानो समस्त प्रकृति की शक्तियो से देखा न गया। सब-की-सब उसे ध्वस्त करने पर उद्यत हो गईं—

"आह! यह सुख उनसे देखा न गया। अनारकली को खिलते देख कर चाँद जल उठा, उस ईर्ष्याग्नि मे वह दिन दिन क्षीण होने लगा। उषा ने अनारकली की मस्ती से भरी अलसाई हुई उन अधखुली पलको को देखा और क्रोध के मारे उसकी आँख लाल लाल हो गई। गोधूली ने यह अपूर्व सुखद मिलन देखा और अपने अचिरस्थायी मिलन को याद कर उसने अपने मुग पर निराशा का काला घूंघट खीच लिया।"

महाराजकुमार के ये सव निबन्ध भावात्मक है यह तो स्पष्ट है। भावात्मक निवन्धो की दो शैलियाँ देखी जाती है—धारा-शैली और तरग शैली। इन निवन्धो की तरग-शैली है जिसे विक्षेप-शैली भी कह सकते है। यह भावाकुलता की उखडी-पुखडी शैली है। इसमें भावना लगातार एक ही भूमि पर समगति से नहीं चलती रहती, कभी इस वस्तु को, कभी उस वस्तु को पकड कर उठा करती है।

इस उठान को व्यक्त करने के लिए भाषा का चढ़ाव-उतार अपेक्षित होता है। हृदय कहीं वेग से उमड़ उठता है, कहीं वेग को न सँभाल सकने के कारण शिथिल पड़ जाता है, कहीं एकबारगी स्तब्ध हो जाता है। ये सब बातें भाषा में झलकनी चाहिए। 'शेष स्मृतियाँ' जिस शैली पर लिखी गई उसमें इन बातो की पूरी झलक है। कहीं कुछ दूर तक सम्बद्ध और बीच-बीच में उखड़े हुए वाक्य, कहीं छूटे हुए शून्य स्थल, कहीं अधूरे छूटे प्रसंग, कहीं वाक्य के किसी मर्मस्पर्शी शब्द की आवृत्ति, ये सब लक्षण भावाकुल मनोवृत्ति का आभास देते हैं। इन्हें हम भाषा की भावभंगि कह सकते हैं।

प्रभाव-वृद्धि के लिए वाक्य के पदो का कहाँ कैसा स्थान विपर्य्यय करना चाहिए इसकी भी बहुत अच्छी परख लेखक महोदय को है जैसे—

"अपनी दशा को देखकर सुध आती है उन्हें उन करोडो मनुष्यो की जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ कुचली गई थी।"

भावात्मक लेखो में शब्द की सब शक्तियो से काम लेना पड़ता है। लक्षण के द्वारा वाग्वैचित्र्य का सुन्दर और आकर्षक विधान प्रस्तुत पुस्तक में जगह जगह मिलता है जिससे भाषा पर बहुत अच्छा अधिकार प्रकट होता है। काव्य तथा भावप्रधान गद्य में आजकल लक्षणा का पूरा सहारा लिया जाता है। आधुनिक अभिव्यंजना प्रणाली की सब से बड़ी विशेषता यही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके द्वारा हमारी भाषा में बहुत-कुछ नई लचक, नया रग और नया बल आया है। लाक्षणिक प्रयोग बहुत-से तथ्यों का मूर्त्त रूप में प्रत्यक्षीकरण करते हैं जो अधिक प्रभावपूर्ण और मर्मस्पर्शी होते है। पर जैसे और सब बातो में वैसे ही इसमें भी अति से बचने की आवश्यकता होती है। वाच्यार्थ का लक्ष्यार्थ के साथ कई पक्षो से अच्छा सामंजस्य देख कर तथा उक्ति की अर्थ-व्यंजकता और उसके मार्मिक प्रभाव को नाप-जोख कर ही कुशल लेखक चलते हैं। 'शेष स्मृतियाँ'

पढ़ कर यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराजकुमार इसी निपुणता के साथ चले है।

प्रस्तुत निबन्धो में जड़ वस्तुओ में मानुषी सजीवता का आरोप हमें बराबर मिलता है। आधुनिक कविता तो अखिल प्रकृति के नाना दृश्यो को भी नर-प्रकृति के भीतरी-बाहरी रूप-रग में देखा करती है। पर प्रकृति को सदा इसी सकुचित रूप में देखना व्यापक अनुभूति वालो को खटकता है। मगर महाराजकुमार ने मानुषी सजीवता का जो आरोप किया है वह खटकने वाला नहीं है। इसका कारण है। आपने जो विषय लिए है वे मनुष्य की कृतियाँ है। उनके रूप मनुष्य के दिए हुए रूप है। वे मानव जीवन के साथ सम्बद्ध है। उनकी अतीत शोभा, कान्ति, चमक-दमक इत्यादि कुछ मनुष्यो की सुख-समृद्धि के अग है। इसी प्रकार उनकी वर्त्तमान हीन दशा उन मनुष्यो की हीन दशा के अग है। उनकी भावना के साथ मनुष्य के सुख, उल्लास और विलास की अनुभ्ति तथा दु ख, दैन्य और नैराश्य की वेदना लगी हुई है।

"शाहजहाँ बेबस बैठा रो रहा था। अपने प्रेम को अपनी आँखो के सामने उसने मिट्टी मे मिलते देखा। और तब
उसने अपने दिल पर पत्थर रखकर अपनी प्रेयसी पर भी पत्थर जड दिए।"

'पत्थर रखना' एक ओर तो लाक्षणिक है, दूसरी ओर प्रस्तुत। दोनो का कैसा मार्मिक मेल यहाँ घटा है।

"उस नरक के वे कठोर पत्थर, अभागो के टूटे दिलो के वे घनी-भूत पुज भी रो पडे।" इसमें भीतर और बाहर की बिम्ब-प्रति-बिम्ब स्थिति दिखाई गई है।

मूर्त्त रूप खडा करने के लिए जिस प्रकार भाववाचक शब्दो के स्थान पर कुछ वस्तुवाचक शब्द रखे जाते है उसी प्रकार कभी कभी लोकसामान्य व्यापक भावना उपस्थित करने के लिए व्यक्तिवाचक

या वस्तुवाचक शब्दों के स्थान पर उपादान लक्षणा के बल पर भाव-वाचक शब्द भी रखे जाते हैं। इस युक्ति से जो तथ्य रखा जाता है वह बहुत भव्य, विशाल और गंभीर होकर सामने आता है। इस युक्ति का अवलंबन हमें बहुत जगह मिलता है जैसे—

"तपस्या के चरणो में राज्यश्री ने प्रणाम किया।"

"दिल्ली के उस स्वर्ग की मस्ती गली-गली भटकती फिरी, मादकता हिजड़ों के पैरो में लोटने लगी, विलासिता सूदखोर बनियो के हाथ बिकी।"

जड़ में सजीवता के आरोप के थोड़े से सुन्दर उदाहरण लीजिए—

"उन श्वेत पत्थरो में से आवाज़ आती है—'आज भी मुझे उसकी स्मृति है'।"

"उन पहाड़ियो की मस्ती फूट पड़ी, उनके भी उन ऊबड़-खाबड़ कठोर शुष्क कपोलो पर यौवन की लाली झलकने लगी।"

"वे भी दिन थे जब पत्थरो तक में यौवन फूट निकला था। जब बहुमूल्य रंगबिरंगे सुन्दर रत्न भी उन कठोर निर्जीव पत्थरो से चिपटने को दौड़ पडे ... और चाँदी-सोने ने भी जब उनसे लिपट कर गौरव का अनुभव किया था।.... उन श्वेत पत्थरो में भी वासना और आकांक्षाओ की रंगबिरंगी भावनाएँ झलकती थी। उन सुन्दर सुडौल पत्थरो के वे आभूषण, वे सच्चे सुकोमल सुगन्धित पुष्प भी उनसे चिमट कर भूल गए अपना अस्तित्व, उनके प्रेम में पत्थर हो गए।"

"हाँ! स्वर्ग ही तो था, पशु-पक्षी भी अनजान में जो वहाँ पहुँच गए तो वे भी मस्ती में धुत हो गए और स्वर्ग में ही रम गए। वे ही सुन्दर मयूर जो अपनी सुन्दरता का भार समेटे पीठ पर लादे फिरते हैं, काली घटा को देख उल्लास के मारे चीखते हैं, हरे हरे मैदानो पर स्वच्छन्द विचरते हैं.... .वे ही मयूर उस स्वर्ग में जाकर भारतीय सम्राट् के सिंहासन का भार उठाने को तैयार

हो गए और वह भी शताब्दियो तक । परन्तु उस सुन्दर लोक मे उस काली घटा को देखने के लिए वे तरसने लगे, लाली देखते देखते हरियाली के लिए वे लालायित हो गए । और जब भारत के कलेजे पर साँप लोट गया तब मयूर उस साँप को खाने के लिए दौड पडे । आक्रमणकारी के पीछे पीछे तख्तताऊस उडा चला गया ।"

भावुक लेखक की कुछ रमणीय और अनूठी उक्तियाँ नीचे दी जाती है—

"वह प्यासा हृदय प्रेम-जल की खोज मे निकला । . जीवन-प्रभात मे ओस-रूपी स्वर्गीय प्रेमकणो को बटोरने के लिए वह पुष्प खिल उठा, पँखुडियाँ अलग अलग हो गईं ।" इसमें प्रेम-वासना-पूर्ण हृदय की प्रफुल्लता का कैसा सुन्दर संकेत है ।

कहीं कही महाराजकुमार ने भावना के स्वरूप की बहुत सूक्ष्म और सच्ची परख का परिचय दिया है । किसी प्राचीन स्थान पर पहुँचने पर उस स्थान से सम्बन्ध रखने वाले अतीत दृश्य कल्पना में खडे होने लगते है, अतीत काल के व्यक्ति सामने चलते-फिरते-से जान पडने लगते है । यदि सन्नाटा और अँधेरा हुआ, वर्त्तमान काल के रूप-व्यापार सामने न आए तो यह कल्पना कुछ देर बनी रहती है । वर्त्तमान काल के रूप-व्यापार आँखो के सामने स्पष्ट होते ही उसमें बाधा पडती है, उसका भग हो जाता है । रात के सन्नाटे और अँधेरे में भूतकाल का परदा उठ-सा जाता है, दिन के प्रकाश में मानो फिर काला परदा पड जाता है और भूतकाल के प्राणी दृष्टि से अन्तर्हित हो जाते है—

"उस सुनसान परित्यक्त महल मे रात्रि के समय सुन पडती है उल्लासपूर्ण हास्य तथा विषादमय करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनियाँ । वे अशान्त आत्माएं आज भी उन वैभवविहीन खडहरो मे घूमती है । किन्तु जब धीरे धीरे पूर्व मे अरुण की लाली देख पडती

है, आसमान पर स्वच्छ नीला परदा पड़ने लगता है, तव पुन इन महलो मे वही सन्नाटा छा जाता है।"

साहित्य-समीक्षकों का कहना है कि कवि जिस क्षण में अनुभव करता है उस क्षण में तो लिखता नहीं। पीछे कालान्तर में स्मृति के आधार पर वह अपनी भावना व्यक्त करता है जो कुछ-न-कुछ विकृत अवश्य हो जाती है। इस वात का उल्लेख भी एक स्थल पर इस प्रकार मिलता है—

"आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दर्शक भी, उसका पूरा पूरा जीता-जागता वृत्तान्त नही लिख सके। जिस किसी ने स्वय यह स्वप्न देखा था, उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया। . . .और जव नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तव नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी मे वह चंचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके विना उस वर्णन में कोई भी आकर्षण या जीवन नही रहता है।"

मैं तो आश्चर्यपूर्वक देखता हूं कि आपकी लेखनी में वही चंचलता, वही मादकता, वही स्फूर्ति है जो आपकी भावना में उस समय रही होगी जव आप उन पुराने खंडहरो पर खड़े रहे होगे।

अपनी चिर पोषित और लालित भावनाओं को हृदय से निकाल कर इस वेढव संसार के सामने रखते हुए आपको कुछ मोह हुआ है; आप कुछ हिचके भी है—

"हां! अपने भावो को लुटाने निकला हूं, परन्तु किस दिल से उन्हे कहूं कि जाओ। यह सत्य है कि ये रही-सही स्मृतियां. . दिल मे वहुत दर्द पैदा करती है, फिर भी वे अपनी वस्तु रही है। अपनी प्यारी वस्तु को विदा देने. . . .आज खेद अवश्य होता है। . जानता हूं कि वे पराये हो चुके है फिर भी उनको सर्वदा के लिए विदा करते दो आंसू ढलक पडते है। परन्तु आज सवसे अधिक भविष्य की चिन्ता सता रही है। अपने स्वप्नलोक

के अवशेष—वे भग्नावशेष ही क्यों न हो, है तो मेरे कल्पनालोक के खँडहर—मेरे हृदय के वे सुकोमल भाव, आज वे निराश्रय इस कठोर भौतिक जगत् में —इस कठोर लोक मे जहाँ मानवीय भावो का कोई खयाल नही करता, मानवीय इच्छाओ तथा आकाक्षाओ का उपहास करना एक स्वाभाविक बात है।"

महाराजकुमार निश्चिन्त रहें। उनके इन सुकुमार भावों को कठोर संसार की जरा भी ठेस न लगेगी। ये हृदय के मर्मस्थल से निकले है और सहृदयो के शिरीष-कोमल अन्तस्तल में सीधे जाकर सुखपूर्वक आसन जमाएँगे।

दुर्गा कुंड, काशी
२६–७–१९३८

रामचन्द्र शुक्ल

शेष स्मृतियाँ

शेष स्मृतियाँ

स्मृतियाँ, स्मृतियाँ,..... उन गए बीते दिनो की स्मृतियाँ, उन मस्तानी घडियो की याद, उस दीवाने जीवन के वे एकमात्र अवशेष, . और उन अवशेषो के भी ध्वसावशेष, विस्मृति के काले पट पर भी विलुप्त न हो सकने वाली स्मृतियाँ.. । उनमे कितनी मादकता भरी होती है, कितनी कसक का उनमे अनुभव होता है, कितना दर्द वहाँ बिखरा पडा होता है ! सुख और दुःख का यह अनोखा सम्मिश्रण ...उल्लास और आहें, विलास और दर्द की टीस, ऐश्वर्य तथा दारिद्रय का भीषण अट्टहास. .... आह ! कितनी निश्वासें, कितनी उसासे निकली पडती है । वे ही दो आँखे और उन्ही में सुख और दुःख के वे आँसू.. .. ।

परन्तु जीवन, मनुष्य का बीता हुआ जीवन.. . वह तो एक स्मृति है—समय द्वारा भग्न, सुख-दुःख द्वारा जर्जरित तथा मानवीय आकाक्षाओ और भावनाओ द्वारा छिन्न-भिन्न प्रासाद का एक करुणापूर्ण अवशेष है । और ऐसे अवशेषो पर बहता है समय का निस्सीम प्रवाह—प्रति दिन लहरें उठती है, ज्वार बढता जाता है और मानव-जीवन के वे अवशेष, जलमग्न खण्डहर, ससार की आँखो से लुप्त पानी मे ही अनायास गल गल कर नष्ट हो जाते है, और ... उनके स्थान पर रह जाती है स्मृतियो की मुट्ठी भर मिट्टी ।

किन्तु उस मिट्टी मे भी जीवन होता है ; भावनाएँ और वासनाएँ उसे उद्दीप्त करती है . विस्मृति की शीतलता उन्हे शान्त करती है, और सुख-दुःख का भीषण अन्धड उन जीवन-कणो को बिखेर

कर पुन शान्त हो जाता है। उन स्मृति-कणो की उपेक्षा कर, उन्हे विखेर कर, उनको विनष्ट कर, समय शान्ति की निश्वास लेता है, किन्तु वे कण उन स्मृतियो पर बहाए गए सुख-दु ख के अश्रु-वारि से पुन अकुरित होते है, उन नव-अकुरित कणो के आधार पर उठता है एक स्वप्नलोक और एक बार पुन हम उन बीते दिनो की मादकता और कसक मे डूबते उतराते है।

समय ने उपेक्षा की मनुष्य की, उसके जीवन के रगमच पर विस्मृति का प्रवाह वहा दिया, परन्तु उस प्रवाह के नीचे दबा हुआ भी वह अश्रुपूर्ण जीवन मानवीय जीवन को बनाए रखता है। समय, मनुष्य की इच्छाओ, आकाक्षाओ, उसके उस तडपते हुए हृदय तथा महत्त्वाकाक्षापूर्ण मस्तिष्क को नष्ट कर सका, किन्तु विस्मृति के उस जीवनलोक मे आज भी विचरती है उन गए बीते दिनो की सुधियाँ। जीवन को नष्ट कर सकने पर भी समय स्मृतियो के सौन्दर्य तथा मनुष्य के भोलेपन के भुलावे मे आ गया। सुन्दरता, अकृत्रिम सुन्दरता और वह नैसर्गिक भोलापन किसे इन्होने आत्म-विस्मृत नही किया। कठोर-हृदय समय भी भूल गया अपनी कठोरता को अपने प्रलयकारी स्वभाव को, और उस स्वप्नलोक मे विचर कर वह स्वय एक स्मृति वन गया।

× × ×

स्मृतियाँ, मनुष्य के स्वप्नलोक के, उसके उन सुखपूर्ण दिनो के भग्नावशेष है। इस भूलोक पर अवतरित होकर भी मनुष्य नही भूल सकता है उस सुन्दर स्वर्गीय स्वप्नलोक को। वह मृगतृष्णा, उस विशुद्ध कल्पनालोक मे विचरण करने की वह इच्छा—जीवन भर दौडता है मनुष्य उस अदम्य इच्छा को तृप्त करने के लिए

किन्तु स्वप्नलोक, वह तो मनुष्य से दूर खिचता ही जाता है, और उसका वह मनोहारी आकर्षक दृश्य भुलावा दे दे कर ले जाता है मनुष्य को उस स्थान पर जहाँ वह स्वर्ग, कल्पना का

स्वर्ग, स्थायी नहीं हो सकता है। वह अचिरस्थायी स्वर्ग भंग हो कर मनुष्य को आहत कर उसे भी नष्ट कर देता है।

किन्तु उस स्वप्नलोक में, भावनाओं के उस स्वर्ग मे एक आकर्षण है, एक मनमोहक जादू है, जो मनुष्य को अपनी ओर बरबस खीचे जाता है। और उस स्वप्नलोक की वे स्मृतियाँ, उसकी वह दु खद करुण कहानी, उसके भग्न होने की वह व्यथापूर्ण कथा, . उसकी असारता को जानते हुए भी मनुष्य उसी ओर खिचा चला जाता है।

वे स्मृतियाँ, भग्नाशाओं के वे अवशेष कितने उन्मादक होते है ? प्रेम की उस करुण कहानी को देख कर न जाने क्यो आँखो मे आँसू भर आते है। और उन भग्न खण्डहरों मे घूमते घूमते दिल में तूफान उठता है, दो आहें निकल पडती है, उसासें भर जाती है, आँसू ढलक पडते है और . । उफ ! इन खण्डहरो मे भी जादू भरा है, समय को भुलावा दे कर, अब वे मनुष्य को भुलावा देने का प्रयत्न करते है। भग्न स्वप्नलोक के, टूटे हुए हृदय के, उजडे स्वर्ग के उन खण्डहरो ने भी एक नए मानवीय कल्पना-लोक की सृष्टि की। हृदय तडपता है, मस्तिष्क पर बेहोशी छा जाती है, स्मृतियो का बवण्डर उठता है, भावो का प्रवाह उमड पडता है, आखें डबडबा कर अंधी हो जाती है, और अब . विस्मृति की वह मादक मदिरा पीकर . .नही समझ पडता है कि किधर बहा जा रहा हूँ। धमनियो मे कम्पन हो रहा है, दिल धडकता है, मस्तिष्क मे एक नवीन स्फूर्ति का अनुभव होता है . .। पागलपन ? मस्ती ? दीवानापन ? कुछ भी समझ मे नही आता है कि क्या हो गया मुझे ? और कहाँ ? किधर ? . .यहाँ तो कुछ भी नहीं सूझ पडता।

परन्तु अरे ! धीरे धीरे उठ रही है विस्मृति की वह काली यवनिका, धीरे धीरे लुप्त हो रहा है गत को वर्तमान मे विलग करने

वाला वह कुहरा। देखता हूँ इन करुण स्मृतियो के वे मस्ताने दिन, उनका वह उत्थान और उन्ही का यह अन्त। इठलाते हुए नवयुवा साम्राज्य के युवा सम्राट् अकबर का वह मदभरा छलकता हुआ यौवन, वह मस्तानी अदा—पागल कर देती है अब भी उसकी स्मृति। ससार पडा लोट रहा था उसके चरणो मे, यौवन-साकी मदिरा का प्याला भर रहा था, राज्यश्री उसके सम्मुख नृत्य कर रही थी। किन्तु रूठ गया वह प्रेमी अपनी प्रेयसी नगरी से, और सधवापने मे उस नगरी ने विधवा वेप पहिन लिया। लुटा दिया उसने अपना वह वैभव, टुकडे टुकडे कर डाले अपने रगविरगे वस्त्र पट, चीर डाला अपना वक्ष स्थल और अपने भग्न हृदय को अपने प्रेमी के चरणो मे चढा कर मृत्यु से आलिगन किया। परन्तु उसकी माँग का सिंदूर, सधवावस्था का वह एकमात्र चिन्ह, और उसके मस्ताने यौवन की वह मादकता, आज भी उस भग्न नगरी के वे अवशेप उनकी लाली मे रँगे हुए है।

और तब जहाँगीर की वह प्रथम प्रेम-कहानी, उस अनारकली का प्रस्फुटन तथा उसका कुचला जाना, विनप्ट किया जाना, नूरजहाँ की उठती हुई जवानी तथा जहाँगीर के टूटे हुए दिल पर निरन्तर किए जाने वाले वे कठोर आघात । जहाँगीर प्याले पर प्याला ढाल रहा था, किन्तु अपने हृदय की वेदना को, कसक को नही भूल सकता था। उनका वह अस्थायी मिलन, कुछ ही दिनो की वे सुखद घडियाँ, तथा उनका वह चिर वियोग । वे तडपती हुई आत्माएँ प्रेमसागर मे नहाकर भी शान्त नही हुई, और आज भी छाती पर पत्थर रखे, अपने अपने विद्रोही हृदयो को दबाए हुए है।

शाहजहाँ की वह सुहागरात गुजर गई आँखो के सामने से। वह प्रथम मिलन, आशा-निराशा के उस कम्पनशील वातावरण मे वह सुखपूर्ण रात, छलक पडा वह यौवन, बिखर गया वह सुख

और निखर गई मस्ताने यौवन की वह लाली—उसने रँग दिया उसके समस्त जीवन को। किन्तु ....अरे ! यह क्या ? लाली का रग उडता जाता है, वह यौवन छोड कर चल देता है, वह मस्ती लौट कर नही आती। ज्यो ज्यो जीवन-अर्क ऊँचा चढ़ता जाता है, त्यो त्यो लाली श्वेतता मे परिवर्तित होती जाती है। और जब लुटा वह प्रेमलोक. ... ताज सिर पर धरा था, किन्तु डाल दिया उसे प्रेयसी के चरणो मे, और लुटा दिया अपना रहा-सहा सुख भी। शाहजहाँ बेबस बैठा रो रहा था। अपने प्रेम को अपनी आँखो के सामने उसने मिट्टी मे मिलते देखा। और तब .....उसने अपने दिल पर पत्थर रख कर अपनी प्रेयसी पर भी पत्थर जड दिए।

किन्तु सबसे अधिक मोहक था वह भौतिक स्वर्ग, जिसको जहान के शाह ने बनवाया था, जिसको जमुना ने अपने दिल के पानी से ही नही सीचा था, किन्तु जिसे राज्यश्री ने भी अभिसिंचित किया था। वहाँ . .सौरभ, संगीत और सौन्दर्य का चिरप्रवाह बहता था, दुःख भूले-भटके भी नही आने पाता था। प्रेमरस के वे सुन्दर जगमगाते हुए स्फटिक प्याले, .. प्याले शताब्दियो तक ढले, उनमे जीवनरस उँडेला गया और वही मस्ती का नग्न नृत्य भी हुआ। परन्तु एक दिन मदिरा की लाली को मानव रुधिर की लाली ने फीका कर दिया, जीवनरस को सुखाने के लिए मृत्यु-रूपी हलाहल ढला, मस्ती को विवशता ने निकाल बाहर किया, मादकता को करुणा ने धक्के दिए, और अन्त मे उस स्वर्ग ने अपने खण्डहर देखे, बाल्यकाल की चीखें सुनी, अपने यौवन को सिसकते देखा, बूढो की निश्वासो की हुताग्नि मे रही-सही अपनी मादकता को जल-भुन कर खाक होते देखा। आह ! स्वर्ग उजड गया, यमुना का प्रेमस्रोत सूख गया, उसने मुंह मोड लिया ; और उस स्वर्ग के वे देवता, उस सुखलोक के वे उपभोक्ता,—उन खण्डहरो की गुफ़

नज़र देख कर वे भी चल दिए   चल दिए, छोड कर चल दिए। स्वर्गने दो हिचकियो मे दम तोडा, और उस मृत भग्न स्वर्ग को, उस मस्ताने मदमाते स्वर्ग के उस निर्जीव निश्चेष्ट शव को देख कर ढलक पडे दो आँसू !

दो आँसू ? हाँ ! गरम गरम तपतपाए हुए दो आँसू, निश्वास की भट्टी मे तपे हुए वे अश्रुकण   आह ! ये आँसू भी इन आँखो को छोड कर चल दिए। और साथ ही साथ   अरे ! मेरा स्वप्नलोक भी भग्न हो गया, उन आँसुओ ने उस स्वर्ग को बहा दिया,   कुछ होश सा होता है, कुछ खयाल आता है, कहाँ था अब तक ? स्वप्नलोक मे स्वर्ग को उजडते देखा था। आह ! स्वप्न मे भी स्वर्ग चिरस्थायी नही हो सका। स्वप्नलोक मे भी वही रोना। मानवीय आकाक्षाएँ भग्न होती है, निराशाएँ मुंह वाए उनका सामना करती है, कठोर निर्जीव जीवन उस स्वर्ग को तोड-फोड डालता है, तथापि स्वप्न देखने की यह लत ! इतने कठोर सत्यो का अनुभव कर, उन करुणा-जनक दृश्यो को देख कर भी पुन उन सुखपूर्ण दिनो की याद करना। स्वप्नलोक मे विचरने का वह प्रलोभन, तथा मस्ती लाने वाली विस्मृति-मदिरा को एक बार मुंह से लगा कर ठुकरा देना   इतनी कठोरता   दिल नही कर सकता है ऐसी निष्ठुरता।

परन्तु मेरा वह स्वप्नलोक, मेरे आश्चर्य तथा आनन्द की वस्तु, अरे ! वह भग हो गया। स्वप्न मे भी भौतिक स्वर्ग को उजडते देखा, उसके खण्डहरो का करुणापूर्ण रुदन सुना, उसकी वे मर्माहत निश्वासे सुनी, और उनके साथ ही मै भी रो पडा। उजड गया है मेरा स्वप्न-लोक, और आज जब होश सा होता है तो मालूम होता है कि मै स्वय भी लुट चुका हूँ।

उस प्रिय लोक की वे कोमल सुधियाँ, उसके एकमात्र अवशेष, वे सुखद या करुणाजनक स्मृतियाँ—अरे ! उन्हे भी लूट ले गया यह

कठोर निष्ठुर भौतिक जगत । आज तक मै स्वप्न देखता था, उसका आनन्द उठाता था, हँसता था, रोता था, सिर पीट कर लोटता था, सिसकता था, किन्तु ये सब भाव मेरे अपने थे । उन्हें मै अपने हृदय मे, अपने दिल के पहलू में, उन्हे अपनी एकमात्र निधि समझे छिपाए रखता था । कितनी आराधना के बाद उस स्वप्नलोक का आविर्भाव हुआ था, और उस स्वप्न को देखने मे, अपने उस प्यारे लोक मे विचरते विचरते कितने दिन रात और कितनी रातें दिन हो गई थी । और इन प्यार से पाले पोसे गए उस मस्ताने पागलपन के वे विचार, उन दिनो के वे भाव जब अनेक बार जी ललच कर रह जाता था, जब वासनाएँ उद्दाम होने को छटपटाती थी, जब आकाक्षाएँ मुक्त होने को तडपती थी, जब उस स्वप्नलोक में विचर विचर कर मै भी उन महान् प्रेमियो के प्रेम तथा उनके जीवन के मादक और करुणाजनक दृश्य देखता था, उनके साथ उल्लासपूर्वक कल्लोल करता था, उन्ही के दर्द से दुखी रोता था, आँसू बहाता था । किन्तु वे दिन . अब स्वप्न हो गए, और उन दिनो की स्मृतियाँ—उन अनोखे दिनो की एकमात्र यादगार—भी अब मेरी अपनी न रही । उन मस्ती मे उस बेहोशी में मै न जाने क्या क्या बक गया—और जो भाव अब तक मेरे हृदय मे छिपे पड़े थे उनको संसार ने जान लिया, उन्हे संसार ने अपना लिया । जो आज तक मेरे अपने थे वे अब पराए हो गए । आज भी उन्हें पट कर वे ही पुराने दिन याद आ जाते है, उस स्वप्नलोक का वह आरम्भ और उसका यह अन्त ! और जब फिर सुध हो जाती है उन दिनो की, तब पुन मस्ती चढती है या दर्द के मारे कसकता हूँ । परन्तु अब वे पराए हो गए तो रहे-सहे का मोह छोड कर सब कुछ खुले हाथो लुटाने निकला हूँ आज ।

हाँ ! अपने भावो को लुटाने निकला हूँ, परन्तु फिर भी किस दिल से उन्हे कहूँ कि जाओ । बरसो का साथ छूट रहा है । यह सत्य है कि ये रही-सही स्मृतियाँ अपने भग्न स्वप्नलोक की याद दिला कर

हृदय मे दु ख का प्रवाह उमडा देती है, वे दिल मे वहुत दर्द पैदा करती है, फिर भी वे मेरी अपनी वस्तु रही है। अपनी प्यारी वस्तु को विदा देते, अपने हृदय मे जिसे एक बार आश्रय दिया था, वडे आदर तथा प्रेम से जिसे हृदय मे छिपाए रखा था, उससे विलगते आह ! आज खेद अवश्य होता है। जानता हूँ कि वे पराए हो चुके है, फिर भी आज उनको सर्वदा के लिए विदा करते दो आँसू ढलक पडते है। अव किन्हे मै अपनी एकमात्र सम्पत्ति समझूंगा ? किन्हे अपनी वस्तु जान कर दिल मे छिपाए फिरूँगा, और ससार से छिपा छिपा कर एकान्त में उन्हे बार बार देख कर तथा उन्हे अपने हृदय मे स्थित जान कर स्वय को भाग्यवान् व्यक्ति समझूंगा ?

विदा ! अल्विदा ! अव कहाँ तक यह लाग लपेट ? परन्तु जव जुदा हो रहे है, ममता लिपट रही है, वेवसी खडी रो रही है, करुणा वेहोश पडी सिसक रही है और मेरा दुर्भाग्य, वह तो खडा मुस्कराता ही जाता है। परन्तु आज तो सवसे अधिक भविष्य की चिन्ता सता रही है। विचार मात्र से ही दिल दहल उठता है। अपने स्वप्न-लोक के अवशेष—वे भग्नावशेप ही क्यो न हो, है तो मेरे कल्पनालोक के खण्डहर,—मेरे हृदय के वे सुकोमल भाव, आज वे निराश्रय इस कठोर भौतिक जगत मे—इस कठोर लोक मे जहाँ मानवीय भावो का कोई खयाल नही करता, मानवीय इच्छाओ तथा आकाक्षाओ का उपहास करना एक स्वाभाविक वात है, जहाँ मानवीय हृदय के साथ खेल करने मे ही आनन्द आता है, तडपते हुए आहत हृदय पर चोट करना मनो-रजन की एक सामग्री है ओह ! अव आगे कुछ भी नही सोच सकता।

विदा तो दे चुका हूं परन्तु उनके आश्रय के लिए किससे कहूँ ? क्या कहूँ ? कुछ कहने से भी क्या होगा ? उनके साथ अव मेरा क्या सम्वन्ध रह गया है ? और जव वे पराए हो चुके है परन्तु,

हाँ। फिर भी अपनी सदिच्छाओ को तो उनके साथ इस ससार में भेज सकता हूँ। अधिक नही तो यही सही। सो अब अन्तिम विदा।

"भवन्तु शुभास्ते पन्थान"।

"रघुवीर निवास,"
सीतामऊ
२३ मार्च, १९३४

रघुवीरसिंह

पुनश्च:—

बरस पर बरस बीतते गए, विदा देकर भी मैं अपनी इन "शेष स्मृतियों" को अपने पास से अलग न कर सका। जी कडा कर प्रयत्न करने पर भी उन्हे ससार में एकाकी विचरने का आदेश न दे सका। और जब संसार ने तकाजा किया तो मैं इनके लिए एक अभिभावक की खोज मे निकला। आचार्य-प्रवर प० रामचन्द्र जी शुक्ल का मैं हृदय से अनुगृहीत हूँ कि उन्होने अपनी लिखी हुई 'प्रवेशिका' को इनके साथ भेजने का आयोजन कर दिया है। मेरी मानवीय दुर्बलता का लिहाज कर पाठकगण इस अवाछनीय देरी के लिए मुझे क्षमा करे, यही एक प्रार्थना है।

"रघुवीर निवास,"
सीतामऊ
५ मई, १९३९

रघुवीरसिंह

ताज

ताज

मनुष्य को स्वय पर गर्व है। वह स्वय को जगदीश्वर की अत्युत्तम तथा सर्वश्रेष्ठ कृति समझता है। वह अपने व्यक्तित्व को चिर-स्थायी बनाया चाहता है। मनुष्य जाति का इतिहास क्या है ? उसके सारे प्रयत्नो का केवल एक ही उद्देश्य है। चिरकाल से मनुष्य यही प्रयत्न कर रहा है कि किसी प्रकार वह उस अप्राप्य अमृत को प्राप्त करे, जिसे पीकर वह अमर हो जाय। किन्तु अभी तक उस अमृत का पता नही लगा। यही कारण है कि जब मनुष्य को प्रति दिन निकटतम आती हुई रहस्यपूर्ण मृत्यु की याद आ जाती है, तब उसका हृदय बेचैनी के मारे तडपने लगता है। भविष्य मे आने वाले अपने अन्त के तथा उसके अनन्तर अपने व्यक्तित्व के ही नही, अपने सर्वस्व के, विनष्ट होने के विचार मात्र से ही मनुष्य का सारा शरीर सिहर उठता है। वह चाहता है कि किसी भी प्रकार इस अप्रिय कठोर सत्य को वह भूल जाय, और उसे ही भुलाने के लिए, अपनी स्मृति से, अपने मस्तिष्क से उसे निकाल बाहर करने ही को कई बार मनुष्य सुख-सागर में मग्न होने की चेष्टा करता है। कई व्यक्तियो का हृदय तो इस विचार मात्र से ही विकल हो उठता है कि समय के उस भयानक प्रवाह में वे स्वय ही नही, किन्तु उनकी समग्र वस्तुएँ, स्मृतियाँ, स्मृति-चिह्न आदि सब कुछ बह जायँगे, इस ससार में तब उनके सासारिक जीवन का चिह्न मात्र भी न रहेगा और उनको याद करने वाला भी कोई न मिलेगा। ऐसे मनुष्य उस भौतिक ससार मे अपनी स्मृतियाँ—अमिट स्मृतियाँ—छोड जाने को विकल हो उठते है। वे जानते है कि उनका अन्त अवश्यम्भावी है,

किन्तु सोचते है कि सम्भव है उनकी स्मृतियाँ ससार मे रह जाँय। पिरेमिड, स्फिक्स, वडे वडे मकबरे, कीर्तिस्तम्भ, कीलियाँ, विजय-द्वार, विजय-तोरण आदि कृतियाँ मनुष्य की इसी इच्छा के फल है। एक तरह से देखा जाय तो इतिहास भी अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने की मानवीय इच्छा का एक प्रयत्न है। यो अपनी स्मृति को चिरस्थायी वनाने के लिए मनुष्य ने भिन्न भिन्न प्रयत्न किए, किसी ने एक मार्ग का अवलम्बन किया, किसी ने दूसरी राह पकडी। कई एक विफल हुए, अनेको के ऐसे प्रयत्नो का आज मानव-समाज की स्मृति पर चिह्न तक विद्यमान नही है। वहुतो के तो ऐसे प्रयत्नो के खण्डहर आज भी ससार मे यत्र-तत्र दिखाई देते है। वे आज भी मूक भाव से मनुष्य की इस इच्छा को देख कर हँसते है और साथ ही रोते भी है। मनुष्य की विफलता पर तथा अपनी दुर्दशा पर वे आँसू गिराते है। परतु यह देख कर कि अभी तक मनुष्य अपनी विफलता का अनुभव नही कर पाया, अभी तक उसकी वही इच्छा, उसकी वही दुराशा उसका पीछा नही छोडती है, मनुष्य अभी तक उन्ही के चगुल मे फँसा हुआ है, वे मूकभाव से मनुष्य की इस अद्भुत मृगतृष्णा पर विक्षिप्त कर देने वाला अट्टहास करते है।

परन्तु मनुष्य का मस्तिष्क विधाता की एक अद्वितीय कृति है। यद्यपि समय के सामने किसी की भी नही चलती, तथापि कई मस्तिष्को ने ऐसी खूबी से काम किया, उन्होने ऐसी चाले चली कि समय के इस प्रलयकारी भीषण प्रवाह को भी वाँधने मे वे समर्थ हुए। उन्होने काल को सौन्दर्य के अदृश्य किन्तु अचूक पाश मे वाँध डाला है, उसे अपनी कृतियो की अनोखी छटा दिखा कर लुभाया है, यो उसे भुलावा देकर कई बार मनुष्य अपनी स्मृति के ही नही, किन्तु अपने भावो के स्मारको को भी चिरस्थायी वना सका है। ताजमहल भी मानव मस्तिष्क की ऐसी ही अद्वितीय सफलता का एक अद्भुत उदाहरण है। किन्तु सौन्दर्य का वह अचूक पाश समय

के साथ मनुष्य भी उसमें बँध जाता है, समय का प्रलयंकारी प्रवाह रुक जाता है, किन्तु मनुष्य के आँसुओ का सागर उमड पडता है, समय स्तब्ध होकर अब भी उस समाधि को ताक रहा है। सूरज निकलता और अस्त हो जाता है, चाँद घटता और बढता है, किन्तु ताज की वह नव-नूतनता आज भी विद्यमान है, शताब्दियो से बहने वाले आँसू ही उस सुन्दर समाधि को धो धोकर उसे उज्ज्वल बनाए रखते है।

× × ×

वह अधकारमयी रात्रि थी। सारे विश्व पर घोर अधकार छाया हुआ था, तो भी जग सोया न था। ससार का ताज, भारतीय साम्राज्य का वह जगमगाता हुआ सितारा, भारत-सम्राट् के हृदय-कुमुद का वह समुज्ज्वल चाँद आज सर्वदा के लिए अस्त होने को था। शिशु को जन्म देने में माता की जान पर आ बनी थी। स्नेह और जीवन की अन्तिम घडियाँ थी, उन सुखमय दिनो का, प्रेम तथा आल्हाद से पूर्ण छलकते हुए उस जीवन का अब अन्त होने वाला था। ससार कितना अचिरस्थायी है!

वह टिमटिमाता हुआ दीपक, भारत-सम्राट् के स्नेह का वह जलता हुआ चिराग बुझ रहा था। अब भी स्नेह बहुत था, किन्तु अकाल काल का झोका आया, वह झिलमिलाती हुई लौ उसे सहन नही कर सकी। धीरे धीरे प्रकाश कम हो रहा था; दुर्दिन की काली घटाएँ उस रात्रि के अन्धकार को अधिक कालिमामय बना रही थी, आशा-प्रकाश की अन्तिम ज्योति-रेखाएँ निराशा के उस अन्धकार मे विलीन हो रही थी। और तब . सब अँधेरा ही अँधेरा था।

इस सासारिक जीवन-यात्रा की अपनी सहचरी, प्राणप्रिया से अन्तिम भेंट करने शाहजहाँ आया। जीवन-दीपक बुझ रहा था, फिर भी अपने प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को देख कर पुन

एक वार लौ वढी, वुझने से पहले की ज्योति हुई, मुमताज़ के नेत्र खुले। अन्तिम मिलाप था। उन अन्तिम घडियो मे, उन आँखो द्वारा क्या क्या मौनालाप हुआ होगा, उन प्रेमियो के हृदयो मे कितनी उथल-पुथल मची होगी, उसका कौन वर्णन कर सकता है ? प्रेमाग्नि से धधकते हुए उन हृदयो की वे वाते लेखक की यह कठोर लेखनी काली स्याही से पुते हुए मुँह से नही लिख सकती।

अन्तिम क्षण थे, सर्वदा के लिए वियोग हो रहा था, देखती आँखो शाहजहाँ का सर्वस्व लुट रहा था और वह भारत-सम्राट् हताश हाथ पर हाथ धरे वेवस वैठा अपनी किस्मत को रो रहा था। सिंहासनारूढ हुए कोई तीन वर्ष भी नही वीते थे कि उसकी प्रियतमा इस लोक से बिदा लेने की तैयारी कर रही थी। शाहजहाँ की समस्त आशाओ पर उसकी सारी उमगो पर पाला पड रहा था। क्या क्या उम्मीदें थी, क्या क्या अरमान थे ? जव समय आया, उनके पूर्ण होने की आशा थी, तभी शाहजहाँ को उसकी जीवन-सगिनी ने छोड दिया। ज्योही सुख-मदिरा का प्याला ओठो को लगाया कि वह प्याला अनजाने गिर पडा, चूर चूर हो गया और वह सुख-मदिरा मिट्टी में मिल गई, पृथ्वीतल मे समा गई, सर्वदा के लिए अदृश्य हो गई।

हाय ! अन्त हो गया, सर्वस्व लुट गया। परम प्रेमी, जीवन-यात्रा का एकमात्र साथी सर्वदा के लिए छोड कर चल वसा। भारत-सम्राट् शाहजहाँ की प्रेयसी, सम्राज्ञी मुमताजमहल सदा के लिए इस लोक से विदा हो गई। शाहजहाँ भारत का सम्राट् था, जहान का शाह था, परन्तु वह भी अपनी प्रेयसी को जाने से नही रोक सका। दार्शनिक कहते है, जीवन एक वुदवुदा है, भ्रमण करती हुई आत्मा के ठहरने की एक धर्मशाला मात्र है। वे यह भी वताते है कि इस जीवन का सग तथा वियोग क्या है—एक प्रवाह मे सयोग से साथ वहते हुए लकडी के टुकडो के साथ तथा विलग होने की कथा है।

परन्तु क्या ये विचार एक सतप्त हृदय को शान्त कर सकते है ? क्या ये भावनाएँ चिरकाल की विरहाग्नि में जलते हुए हृदय को सान्त्वना प्रदान कर सकती है ? सासारिक जीवन की व्यथाओ से दूर बैठा हुआ जीवन-सग्राम का एक तटस्थ दर्शक चाहे कुछ भी कहे, किन्तु जीवन के इस भीषण सग्राम मे युद्ध करते हुए सासारिक घटनाओ के घोर थपेडे खाते हुए हृदयो की क्या दशा होती है, यह एक भुक्तभोगी ही बता सकता है ।

× × ×

वह चली गई, सर्वदा के लिए चली गई । अपने रोते हुए प्रेमी को, अपने जीवन-सर्वस्व को, अपने बिलखते हुए प्यारे बच्चो को तथा समग्र दु खी ससार को छोड कर उस अँधियारी रात में न जाने वह कहाँ चली गई । चिरकाल का वियोग था । शाहजहाँ की आँख से एक आँसू ढलका, उस सन्तप्त हृदय से एक आह निकली ।

वह सुन्दर शरीर पृथ्वी की भेंट हो गया, यदि कुछ शेष था तो उसकी वह सुखप्रद स्मृति, तथा उसकी स्मृति पर उसके उस चिर वियोग पर आहे, निश्वासे और आँसू । ससार लुट गया और उसे पता भी न लगा । संसार की वह सुन्दर मूर्त्ति मृत्यु के अदृश्य क्रूर हाथो चूर्ण हो गई, और उस मूर्त्ति के वे निर्जीव अवशेष ! . . . जगन्माता पृथ्वी ने उन्हें अपने अचल में समेट लिया ।

शाहजहाँ के वे आँसू तथा वे आहें विफल न हुई । उन तप्त आँखो तथा उन धधकते हुए हृदय से निकल कर वे इस बाह्य जगत मे आए थे । वे भी समय के साथ सर्द होने लगे । समय के ठडे झोको की थपकियाँ खाकर उन्होने एक ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण किया कि आज भी उन्हें देखकर न जाने कितने आँसू ढलक पडते है, और न जाने कितने हृदयो में हलचल मच जाती है । अपनी प्रेयसी के वियोग पर बहाए गए शाहजहाँ के वे आँसू चिरस्थायी हो गए ।

मर्त्य, वह तो उस मकबरे के तले बैठा सिर धुनता रहा है। यह मकबरा शाहजहाँ की उस महान् साधना का, अपनी प्रेमिका के प्रति उस अनन्य तथा अगाध प्रेम का फल है। वह कितना सुन्दर है? वह कितना करुणोत्पादक है? आँखें ही उसकी सुन्दरता को देख सकती है, हृदय ही उसकी अनुपम सुकोमल करुणा का अनुभव कर सकता है। ससार उसकी सुन्दरता को देख कर स्तब्ध है, सुखी मानव जीवन के इस करुणाजनक अन्त को देख कर क्षुब्ध है। शाहजहाँ ने अपनी मृता प्रियतमा की समाधि पर अपने प्रेम की अंजलि अर्पण की, तथा भारत ने अपने महान् शिल्पकारो और चतुर कारीगरो के हाथो शुद्ध प्रेम की उस अनुपम और अद्वितीय समाधि को निर्माण करवा कर पवित्र प्रेम की वेदी पर जो अपूर्व श्रद्धाञ्जलि अर्पित की उसका सानी इस भूतल पर खोजे नही मिलता।

× × ×

बरसो मे परिश्रम के बाद अन्त मे मुमताज का वह मकबरा पूर्ण हुआ। शाहजहाँ की वर्षों की साध पूरी हुई। एक महान् यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस मकबरे के पूरे होने पर जब शाहजहाँ बडे समारोह के साथ उसे देखने गया होगा, आगरे के लिए वह दिन कितना गौरवपूर्ण हुआ होगा। उस दिन का —भारत की ही नही ससार की शिल्पकला के इतिहास के उस महान् दिवस का—वर्णन इतिहासकारो ने कही भी नही किया है। कितने सहस्र नर-नारी आबाल-वृद्ध उस दिन उस अपूर्व मकबरे के —ससार की उस महान् अनुपम कृति के—दर्शनार्थ एकत्रित हुए होगे? उस दिन मकबरे को देख कर भिन्न भिन्न दर्शको के हृदयो मे कितने विभिन्न भाव उत्पन्न हुए होगे? किसी को इस महान् कृति की पूर्ति पर हर्ष हुआ होगा, किसी ने यह देख कर गौरव का अनुभव किया होगा कि उनके देश में एक ऐसी वस्तु का निर्माण हुआ है जिसकी तुलना करने के लिए ससार मे कदाचित् ही दूसरी कोई वस्तु मिले, वह एक उस

मकबरे की छबि को देख कर मुग्ध हो गए होगे, न जाने कितने चित्रकार उस सुन्दर कृति को अकित करने के लिए चित्रपट, रग की प्यालियाँ और तूलिकाएँ लिये दौड पडे होगे, न जाने कितने कवियो के मस्तिष्क मे कैसी कैसी अनोखी सूझे पैदा हुई होगी।

परन्तु सब दर्शको मे से एक दर्शक ऐसा भी था जिसके हृदय मे भिन्न भिन्न विपरीत भावो का घोर युद्ध भी हुआ था। दो आँखे ऐसी भी थी, जो मकबरे की उस वाह्य सुन्दरता को चीरती हुई एक-टक उस कब्र पर ठहरती थी। वह दर्शक था शाहजहाँ, वे आँखे थी मुमताज के प्रियतम की आँखे। जिस समय शाहजहाँ ने ताज के उस अद्वितीय दरवाजे पर खडे होकर उस समाधि को देखा होगा उस समय उसके हृदय की क्या दशा हुई होगी, यह वर्णन करना अतीव कठिन है। उसके हृदय मे शान्ति हुई होगी कि वह अपनी प्रियतमा के प्रति किए गए अपने प्रण को पूर्ण कर सका। उसको गौरव का अनुभव हो रहा होगा कि उसकी प्रियतमा की कब्र—अपनी जीवन-सगिनी की यादगार—ऐसी वनी कि उसका सानी शायद ही मिले। किन्तु उस जीवित मुमताज के स्थान पर, अपनी जीवन-सगिनी की हड्डियो पर यह कब्र—वह कब्र कैसी ही सुन्दर क्यो न हो—पाकर शाहजहाँ के हृदय मे दहकती हुई चिर वियोग की अग्नि क्या शान्ति हुई होगी? क्या श्वेत सर्द पत्थर का वह सुन्दर अनुपम मकबरा मुमताज़ की मृत्यु के कारण हुई कमी को पूर्ण कर सकता था? मकवरे को देख कर शाहजहाँ की आँखो के सम्मुख उसका सारा जीवन, जब मुमताज़ के साथ वह सुखपूर्वक रहता था, सिनेमा की फिल्म के समान दिखाई दिया होगा। प्रियतमा मुमताज़ की स्मृति पर पुन आँसू ढलके होगे, पुन सुप्त स्मृतियाँ जग उठी होगी और चोट खाए हुए उस हृदय के वे पुराने घाव फिर हरे हो गए होगे।

पाठको! जब आज भी कई एक दर्शक उस पवित्र समाधि

को देख कर दो आँसू बहाए बिना नही रह सकते, तब आप ही स्वयं विचार कर सकते है कि शाहजहाँ की क्या दशा हुई होगी। अपने जीवन मे बहुत कुछ सुख प्राप्त हो चुका था, और रहे-सहे सुख की प्राप्ति होने को थी, उस सुखपूर्ण जीवन का मध्याह्न होने ही वाला था कि उस जीवन-सूर्य को ग्रहण लग गया, और वह ऐसा लगा कि वह जीवन-सूर्य अस्त होने तक ग्रसित ही रहा। ताजमहल उस ग्रसित सूर्य से निकली हुई अद्भुत सुन्दरतापूर्ण तेजोमयी रश्मियो का एक घनीभूत सुन्दर पुज है, उस ग्रसित सूर्य की एक अनोखी स्मृति है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गई। शाहजहाँ कई बार उस ताजमहल को देख कर रोया होगा। मरते समय भी उस सुम्मन बुर्ज में शैय्या पर पडा वह ताजमहल को देख रहा था। और आज भी न जाने कितने मनुष्य उस अद्वितीय समाधि के उद्यान मे बैठे घटो उसे निहारा करते है, और प्रेमपूर्ण जीवन के नष्ट होने की स्मृति पर, अचिरस्थायी मानव जीवन की उस करुण कथा पर रोते है। न जाने कितने यात्री दूर दूर देशो से बडे भयकर समुद्र पार कर उस समाधि को देखने के लिए खिचे चले आते है। कितनी उमगो से वे आते है, परतु उसासे भरते हुए ही वे वहाँ से लौटते है। कितने हर्ष और उल्लास के साथ वे आते है, किन्तु दो बूंद आँसू बहा कर और हृदय पर दुःख का भार लिये ही वे वहाँ से निकलते है। प्रकृति भी प्रति वर्ष चार मास तक इस अद्वितीय प्रेम के भंग होने की करुण स्मृति पर रोती है।

मनुष्य जीवन की, मनुष्य के दुःखपूर्ण जीवन की—जहाँ मनुष्य की कई वासनाएँ अतृप्त रह जाती है, जहाँ मनुष्य के प्रेम के बधन बँधने भी नही पाते कि काल के कराल हाथो पड कर टूट जाते है,—मनुष्य के उस करुण जीवन की स्मृति—उसकी अतृप्त वासनाओ, अपूर्ण आकाक्षाओ तथा खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि—आज

भी यमुना के तीर पर खडी है। शाहजहाँ का वह विस्तृत साम्राज्य, उसका वह अमूल्य तख़्तताऊस, उसका वह अतीव महान् घराना, शाही ज़माने का चकाचौंध कर देने वाला वह वैभव, आज सब कुछ विलीन हो गया—समय के कठोर झोको मे पडकर वे सब आज विनष्ट हो चुके है। ताजमहल का भी वह वैभव, उसमे जडे हुए वे बहुमूल्य रत्न भी न जाने कहाँ चले गए, किन्तु आज भी ताजमहल अपनी सुन्दरता से समय को लुभा कर उसे भुलावा दे रहा है, मनुष्य को क्षुब्ध कर उसे रुला रहा है, और यो मानव-जीवन की इस करुण कथा को चिरस्थायी बनाए हुए है । वैभव से विहीन ताज का यह विधुर स्वरूप उसे अधिक सोहता है ।

आज भी उन सफेद पत्थरो से आवाज़ आती है—"मै भूला नही हूँ"। आज भी उन पत्थरो में न जाने किस मार्ग से होती हुई पानी की एक बूँद प्रति वर्ष उस सुन्दर सम्राज्ञी की कब्र पर टपक पडती है, वे कठोर निर्जीव पत्थर भी प्रति वर्ष उस सम्राज्ञी की मृत्यु को याद कर, मनुष्य की करुण कथा के इस दु खान्त को देख कर, पिघल जाते है और उन पत्थरो मे से अनजाने एक आँसू ढलक पडता है। आज भी यमुना नदी की धारा समाधि को चूमती हुई भग्न मानव-जीवन की वह करुण कथा अपने प्रेमी सागर को सुनाने के लिए दौड पडती है। आज भी उस भग्न-हृदय की व्यथा को याद कर कभी कभी यमुना नदी का हृदय-प्रदेश उमड पडता है और उसके वक्ष स्थल पर भी आँसुओ की बाढ आती है ।

उन श्वेत पत्थरो मे से आवाज आती है—"आज भी मुझे उसकी स्मृति है"। आज भी उस खिलते हुए प्रेम-पुष्प का सौरभ—उस प्रेम-पुष्प का, जो अकाल मे ही डठल से टूट पडा—उन पत्थरो मे रम रहा है। वह स्खलित पुष्प सूख गया, उसका भौतिक स्वरूप इस लोक मे रह गया, परन्तु उस सुन्दर पुष्प की आत्मा विलीन हो गई, अनन्त में अन्तर्हित हो गई। अपने अनन्त के पथ पर अग्रसर

होती हुई वह आत्मा उस स्खलित पुष्प को छोड कर चली गई, पत्थर की उस सुन्दर किन्तु त्यक्त समाधि में केवल उसकी स्मृति विद्यमान है। यो शाहजहाँ ने निराकार मृत्यु को अक्षय सौन्दर्यपूर्ण स्वरूप प्रदान किया। मनुष्य के अचिरस्थायी प्रेम को, प्रेमाग्नि की धधकती हुई ज्वाला को, स्नेह दीपक की झिलमिलाती हुई उस उज्ज्वल लौ को, चिरस्थायी बनाया।

एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ

एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ

नव यौवन उमड रहा था। बाल्यकाल के उन विपत्तिपूर्ण दिनो को पार कर उन्होने यौवन की देहली पर पदार्पण किया। दोनो का ही यौवन काल आने लगा। यौवन ने अकबर के उस सुन्दर गोरे गोरे चेहरे पर काली काली रेखाएँ अकित कर अपने आगम की सूचना दी। वरसो की अशान्ति के बाद पुन शान्ति छा रही थी। शान्तिपूर्ण वातावरण को पाकर भारत मे नव-जीवन का सचार हुआ। शान्ति-सुधा की घूंट लेकर बूढे भारत ने भी अपना चोला वदला। उसने जीर्ण वृद्ध गलित काय को त्याग कर नवीन स्वरूप धारण किया। मुगल साम्राज्य भी यौवन को पाकर इठलाने लगा।

अकबर का यौवन उभर रहा था। वाल्यकाल से ही उसने राज्यश्री की उपासना आरम्भ की थी। वरसो की कठोर तपस्या तथा घोर तप के अनन्तर वह अपनी प्रेमिका के चरणो मे अर्पण करने के लिए कुछ सामग्री एकत्रित कर चुका था, अनेको भीषण सग्राम, हजारो पुरुषो का वलिदान करने के बाद ही वह कुछ साम्राज्य निर्माण कर पाया था। किन्तु तपस्या निष्फल न गई। जिन राज्य-श्री को प्राप्त करने में वृद्ध अनुभवी हुमायूं विफल हुआ था, वही राज्यश्री अनुभवहीन नवयुवा अकबर के पैरो मे लोटने लगी।

अनन्तयौवना राज्यश्री अपने नये प्रेमी अकबर पर प्रसन्न हुई। अपने उपयुक्त प्रेमी को पाकर उसके हृदय में नई नई उमगें उठने लगी। उनके चिरयुवा हृदय मे पुन जागृति हुई। नई भावनाओ का उनके हृदय-रंगमंच पर नृत्य होने लगा। अपने पुराने प्रेमियो के दिए हुए आभूषण-शृंगारो से उसने मुंह फेर लिया। उसे नया शृंगार

करने की सूझी, नवीन रत्नो के लिए उसने नए प्रेमी की ओर आग्रह-पूर्ण दृष्टि डाली, और अकवर वह तो अपनी प्रेयसी की आँखो के इशारे पर नाच रहा था।

× × ×

यौवन-मदिरा को पीकर उन्मत्त अकबर राज्यश्री को पाकर अब अधिक मस्त हो गया। आँखो मे इस दुहरी मस्ती की लाली छा गई। इतने दिनो के घोर परिश्रम तथा कठिन आपत्पूर्ण जीवन के बाद अपनी प्रेमिका राज्यश्री को पाकर अकवर ऐश्वर्य-विलास के लिए लालायित हो उठा था। वह ढूंढने लगा एक ऐसे अज्ञात निर्जन स्थान को जहाँ वह अपनी उठती हुई उमगो और वढती हुई कामनाओ को स्वच्छन्द कर सके।

अकवर का हृदय एक मानव युवा का हृदय था। प्रारम्भिक दिनो की तपस्या उसकी उमडती हुई उमगो को नही दवा सकी थी, उन्हें शान्त नही कर सकी, विलास-वासना की ज्वाला अव भी अकबर के दिल मे जल रही थी, केवल उसकी ऊपरी सतह पर सयम की राख चट गई थी। परन्तु राज्यश्री की प्रेम-मदिरा ने, उसकी तिरछी नजर की इस चोट ने उस अग्नि को पूर्ण प्रज्वलित कर दिया। धू-धू करके वह धधक उठी। अकवर का रहा-सहा सयम भी इस भीपण ज्वाला की लपटो में पड कर भस्म हो गया। पतगे की नाई अब अकबर भी विलास की दीप-शिखा के आसपास मँडराने लगा।

महान् साम्राज्यकी सत्ता तथा सफलता के उस अनुकूल वातावरण मे अकवर पर खूब गहरा नशा चढा। उसी नशे मे चूर राज्यश्री का प्यारा अकवर इस भौतिक ससार को छोड कर अव स्वप्न-ससार मे विचरने लगा। राज्यश्री के हाथो युवा अकवर ने खूब छक कर पी थी वह मादक मदिरा। अव उसी की गोद मे वेहोश पडा पडा एक स्वप्न देखने लगा। वह स्वप्न क्या था, भारतीय स्थापत्य-कला के इतिहास की एक महान् घटना थी, मध्यकालीन

भारतीय-गगन का एक देदीप्यमान धूमकेतु था। धूमकेतु की नाई अनजाने ही यह स्वप्न आया और उसी की तरह यह भी एकाएक ही अदृष्ट हो गया। एकाएक विलीन हो गया, किन्तु फिर भी संसार मे अपनी अमिट स्मृति छोड गया। जगत के भूतल पर आज भी उस स्वप्न की कुछ स्मृतियाँ यत्र-तत्र अंकित है। ये स्मृतियाँ इतनी सुन्दर है, उनका रहा-सहा, छिन्न-भिन्न, जर्जरित स्वरूप भी इतना हृदयग्राही है कि उनको देख कर ही मनुष्य का हृदय द्रवीभूत हो जाता है और कल्पना-शक्ति के सहारे उन परित्यक्त खण्डहरो के पुरातन प्राचीन वैभवपूर्ण दिनो की याद कर उनके उस स्मृति-संसार की सैर करने को दौड पडता है। जब इन भग्न अवशेषो का, इन परित्यक्त ठुकराई हुई स्मृतियो का स्वरूप भी इतना आकर्षक है तो वह स्वप्न कितना मनोरंजक, सुन्दर तथा उन्मादक रहा होगा, —इसका पता लगाना मानवीय कल्पना के लिए भी एक असम्भव अनहोनी बात है। एक अन्तर्हित स्वप्न की मूक दर्शिका, उस अद्भुत नाटक का वह अनोखा रंगमंच, उस परित्यक्ता नगरी से अधिक सुन्दर तथा अधिक शोचनीय वस्तु भारत मे ढूंढे नहीं मिलेगी।

उस सुखद स्वप्न का वर्णन करना, उसको चित्रित करना एक कठिन समस्या है। उस स्वप्न की स्मृतियाँ इतनी थोडी है, उन दिनो की याद दिलाने वाली सामग्री का इतना अभाव है कि रही-सही सामग्री पर समस्त स्वप्न का वह अद्भुत विशाल भवन निर्माण करना असम्भव हो जाता है। आधुनिक लेखक तो क्या, उस स्वप्न के दर्शक भी, उसका पूरा-पूरा जीता-जागता वृतान्त नही लिख सके। जिस किसी ने स्वयं यह स्वप्न देखा था, उसे ऐश्वर्य और विलास के उस उन्मादक दृश्य ने उन्मत्त कर दिया, वह आश्चर्य-चकित हो विस्फारित नेत्रो से देखता ही रहा, एकटक ताकता रहा। और जब नशा उतरा, कुछ होश हुआ, तब नशे की खुमारी के कारण लेखक की लेखनी में वह

चचलता, मादकता तथा स्फूर्ति न रही, जिनके विना उस वर्णन मे कोई भी आकर्षण या जीवन नही रहता है ।

× × ×

स्वप्न था । मादकता की लहर थी । जोरो से नशा चढ रहा था । ऐश्वर्य-विलास के भयकर उन्मत्त प्रवाह मे अकवर वहा जा रहा था । अकबर एकबारगी स्वप्न-ससार मे विचरण करने लगा । राज्यश्री की गोद मे पडा था, उसे किस वात की कमी प्रतीत होती ? फिर भी एक बात बहुत अखरती थी, अपनी गोद सूनी देख कर उसे दु ख अवश्य होता था । अपने अनेकानेक प्यारे-प्यारे सुकोमल बच्चो को निर्दयी कठोर मृत्यु द्वारा छीने जाते देख कर उसका हृदय विकल हो उठता था । क्रूर काल तथा अदृश्य नियति से चिढ कर वह अपना सिर पीट लेता था, अपनी विवशता पर उसे क्रोध आता था, और वही क्रोध पानी बनकर आँखो की राह टपक पडता था ।

तालाब लहलहा रहा था, उसके पूर्वी किनारे पहाडी पर एक सन्त ससार से विरक्त बैठे ईश्वर-भक्ति मे लीन अपने दिन विता रहे थे । अकबर ने सोचा कि कुछ पुण्य इकट्ठा कर ले, ईश्वर की ही दो विरोधिनी शक्तियो को आपस मे लडा कर कुछ लाभ उठावे । दुर्भाग्य एव क्रूर काल का सामना करने के लिए उसने स्वर्गीय पुण्य को अपनी ओर मिलाने की सोची । अपने विगत जीवन मे एकत्रित पुण्य पर भरोसा न कर वह दूसरो द्वारा सचित पुण्य की भी भीख माँगने के लिए हाथ फैलाए निकाला ।

एक अद्भुत दृश्य था । जो अकबर सहस्त्रो साधु-भिखमगो को राजा वना सकता था, वही आज एक अर्धनग्न तपस्वी के पास भीख माँगने आया । राज्यश्री के लाडले अकबर ने तप के सम्मुख सिर झुकाया, तपस्या के चरणो मे राज्यश्री ने साष्टाग प्रणाम किया । जिस तपस्या ने सासारिक जीवन छुडवाया, भौतिक

सुखों, मानवीय कामनाओं तथा ऐश्वर्य-विलास की वलि दिलवाई, उसी तपस्या ने अपना संचित पुण्य भी लुटा दिया। जब राज्यश्री अचल फैलाए भीख माँगने आई तव तो तपस्वी ने उसकी झोली भर दी। अकवर को मुंह-माँगा वरदान मिला। मनोनुकूल भिक्षा पाकर अकवर लौट गया, शीघ्र ही सलीम का जन्म हुआ, काल की एक न चली, अदृष्ट के अभेद्य कवच को पुण्य के पैने शरों ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

× × ×

अकवर ने पुण्य तथा तपस्या की शक्ति देखी, किन्तु उनकी महत्ता का अनुभव नहीं कर सका। राज्यश्री की गोद में सुख की नींद सोते हुए अकवर को तप अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका। उन्मत्त अकवर की लाल लाल आँखें शुद्ध श्वेत तप से निकलती हुई आभा को नही देख पाई। साधु के संचित पुण्य को पाकर अकवर का मनोरथ सिद्ध हो गया, परन्तु वह इस बात को नहीं समझ पाया कि यह पुण्य साधु की कठोर तपस्या का फल था, उसने इस स्थान को ही पवित्र समझा। अकवर ने सोचा कि "क्यों न मैं इस पवित्र स्थान पर उस पुण्य भूमि में निवास कर, पुण्य तथा राज्यश्री, दोनो की पूर्ण सहायता प्राप्त करूँ जिससे अपनी समस्त वाञ्छाएँ पूर्ण हो सकें"। जहाँ एक वीहड वन था, वहीं अकवर ने एक सुन्दर नगरी निर्माण करने की सोची।

निराशा के घोर अंधकार मे एकाएक बिजली कौंधी और उतनी ही शीघ्रता के साथ विलीन हो गई। अकवर ने तप और संयम की अद्वितीय चमक देखी, किन्तु अनुकूल वातावरण न पाकर वह ज्योति अन्तर्हित हो गई। पुन सर्वत्र भौतिकता का अन्धकार छा गया, किन्तु इस वार उसमें आशा की चाँदनी फैली। अकवर चपला की उस चमक को देख कर चौंका था, उस आभा की ओर आकृष्ट होकर उस ओर लपका, परन्तु कुछ ही आगे बढ़ कर लड़खड़ाने लगा,

पुन मूर्छित हो गया। गिरते हुए अकबर को राज्यश्री ने सम्हाला। यौवन, धन और राजमद से उन्मत्त अकबर आशा की उस चाँदनी को पाकर ही सन्तुष्ट हो गया, एक बार आँख खोल कर उसे निहारा और राज्यश्री की ही गोद मे आँखे बन्द कर पडा रहा। तप और सयम की वह चमक अकबर का नशा नही उतार सकी, उसकी ओर लपक कर अकबर अब अँधियारे मे न रह कर आशा की छिटकी हुई चाँदनी के उस समुज्ज्वल वातावरण मे जा पहुँचा था।

× × ×

अब अकबर पर एक नई धुन सवार हुई। वह सोचने लगा कि उस पवित्र स्थान मे एक नया शहर बसावे, एक ऐसी सुन्दर नगरी का निर्माण करे जहाँ ऐश्वर्य और विलास की समग्र सामग्री एकत्रित हो, जो नगरी सौन्दर्य और वैभव मे भी अद्वितीय हो। मादकता की एक लहर उठ रही थी, स्वप्न-ससार मे विचरते हुए अकबर के मस्तिष्क की एक सनक थी। राज्यश्री के अनन्य प्रेमी अकबर ने अपनी इच्छा पूर्ति के लिए अपनी प्रेयसी का आह्वान किया। अलाउद्दीन के अद्भुत दीपक के भृत की तरह राज्यश्री ने भी अकबर की इच्छा को शीघ्रातिशीघ्र पलक मारते ही पूर्ण करने का प्रण किया।

ससार की उस अनोखी जादूगरनी ने अपनी जादू भरी लकडी घुमाई, और अल्प काल मे ही आश्चर्यजनक तेज़ी से बढने वाले उस आम के पौधे की नाईं उस बीहड वन के स्थान पर एक नगरी उठने लगी। उन्मत्त अकबर की मस्ती ने, उसकी आँखो की लाली ने, उस नगरी को लाली प्रदान की। मस्ताने अकबर के हाथो मे यौवन-मदिरा का प्याला छलक पडा, कुछ मदिरा ढलक गई और उन्ही कुछ छलकी हुई बूंदो ने सारी नगरी को अपने रग मे रँग दिया। जहाँ दुर्गम पहाडियाँ थी वही लाल भवनो की सुन्दर कतारे देख पडने लगी, उन पहाडियो की मस्ती फूट पडी, उनके भी उन ऊबड-खाबड कठोर शुष्क कपोलो पर यौवन की लाली झलकने लगी।

सारी नगरी लाल है। मुगल साम्राज्य के यौवन की लाली, अकबर के मस्ताने दिनो की वह अनोखी मादकता, आज भी इन छिन्न-भिन्न खँडहरो मे दिखाई देती है। अनन्तयौवना राज्यश्री ने इस नगरी का अभिषेक किया था, यही कारण है कि आज भी यौवन की लाली ने, स्वप्न की उस मादकता ने इन पत्थरो का साथ नही छोडा। मुग़ल साम्राज्य के प्रारम्भिक दिनो का वह मदमाता यौवन समय के साथ ही नष्ट हो गया, तथापि आज भी इन रक्तवर्ण महलो को देख कर उन यौवनपूर्ण दिनो की सुध आ जाती है। ज्यो ज्यो मुगल साम्राज्य का यौवन मद उतरता गया त्यो त्यो लाली के स्थान पर प्रौढता की उज्ज्वल आभा रूपी श्वेतता का दौर दौरा बढता गया। मुगल साम्राज्य की प्रौढता के, उसके आते हुए वृद्धापकाल के द्योतक वे श्वेत केश प्रथम बार शाहजहाँ के शासनकाल में दिखाई दिए। दिल्ली के क़िले के वे श्वेत महल, आगरा का वह प्रसिद्ध उज्ज्वल मोती, और उसी का वह अनोखा ताज, मुगल साम्राज्य के ढलकते हुए यौवन में निकले हुए ही कुछ श्वेत केश है।

पानी की तरह धन बहा। श्री से सीचे जाने पर कठोर नीरस ऊसर भूमि में भी अंकुर फूटा। वे वीरान परित्यक्ता पहाडियाँ भी अब सरस हुई, उनका पाषाण हृदय भी पिघल गया। राज्यश्री की जादू भरी लकड़ी घूमी और उन उजाड पहाडियो में धीरे धीरे सुन्दर लाल लाल महलो का एक उद्यान दिखाई देने लगा, और उस उद्यान में खिला एक सुन्दर सुगठित श्वेत पुष्प।

यों उस स्वच्छन्द युवा सम्राट् ने उन्मत्त होकर अपनी कामनाओं तथा आकांक्षाओं को उद्दाम कर दिया। उसकी विलास-वासना उन्मत्त लास्य-लीला करने लगी। अपने सुख-स्वप्न को सच्चा कर दिखाने के लिए सम्राट् ने कुछ भी उठा नहीं रक्खा, और इस तरह संसार को, और विशेषतया भारत को कला का एक ऐसा अद्वि-

तीय दृश्य दिखाया, जिसकी भग्नावशेष स्मृतियो को देख कर आज भी ससार अघाता नही है ।

× × ×

वह स्वप्न था, और उसी स्वप्न मे उस स्वप्नलोक की रचना हुई थी। स्वप्न के अन्त के साथ ही उस लोक का भी पतन हुआ। परन्तु आज भी स्वप्न की, उस स्वप्नलोक की, कुछ स्मृतियाँ विद्यमान है। आओ ! वर्त्तमान को सामने से हटाने वाली विस्मृति-मदिरा का प्याला ढाले, ओर उसे पीकर कुछ काल के लिए इन भग्नावशेषो मे घूम घूम कर उस स्वप्नलोक मे विचरे। तब कल्पना के उन सुनहले पखो पर बैठे उड चलेगे उस लोक मे जहाँ स्वय अकबर विचरता था।

चलो ! सैर कर आवे उस लोक की जहाँ राजमद की कुछ ढलकी हुई बूंदो ने सुन्दर स्वरूप ग्रहण किया, जहाँ प्रथम बार मुगल साम्राज्य का यौवन फूटा, और जहाँ मुगल साम्राज्य तथा मुस्लिम सभ्यता ने भारतीय सभ्यता पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया। यही वह लोक है जहाँ एक वढते हुए साम्राज्य तथा नवयुवा सम्राट् की कामनाओ को तृप्त करने के लिए राज्यश्री इठलाती थी। यही अकबर के हृदय की विशालता पर मुग्ध होकर समस्त भारत ने एक बार उसके चरणो में श्रद्धाजलि अर्पण की तथा उसे अकबर ने सप्रेम विनीत भाव से ग्रहण किया और भारतीय सभ्यता के सूचक उन आभूषणो से नवजात नगरी का शृगार किया।

दिल पर पत्थर रख कर, उसकी वर्त्तमान दशा को भूल कर, चलो उस लोक मे, उस काल मे, जब उस नगरी को सजाने मे, उसको सुशोभित करने मे ही भारत-सम्राट् रत रहता था, जिसका शृगार करने मे ही अपनी सारी योग्यता, अपना समस्त धन एव सारा कला-कौशल उसने व्यय कर दिया। जन्मकाल से ही सारा ससार उस नगरी पर मुग्ध हो गया, और उस सुन्दर नगरी की भेट करने के लिए

अपनी उत्तमोत्तम वस्तुएँ लेकर सब कोई दौड़ पड़े। और उस नगरी में घूम कर उन १५ वर्षो के बहुत कुछ इतिहास का, उस युग के महान् महान् व्यक्तियो का थोडा बहुत पता लग जाता है। अकबर पर राजमद चढा हुआ था, वह स्वप्नलोक में विचरता था, किन्तु फिर भी वह अपने साथियो को नही भूला। वह ऐश्वर्य और विलास के सागर मे गोते लगाने को कूद पड़ा और साथ ही अपने मित्रो को भी खीच ले गया। सीकरी अकबर की ही नही, किन्तु तत्कालीन भारत की एक स्मृति है।

× × ×

संसार का सबसे बड़ा विजय-तोरण, वह बुलन्द दरवाज़ा, छाती निकाले दक्षिण की ओर देख रहा है। इसने उन मुगल योद्धाओ को देखा होगा जो सर्वप्रथम मुगल साम्राज्य के विस्तार के लिए दक्षिण की ओर बढे थे। इसने विद्रोही औरंगजेब की उमड़ती हुई सेना को घूरा होगा, और पास ही पराजित दारा के स्वरूप में अकबर के आदर्शों का पतन भी उसे देखना पडा होगा। अन्तिम मुगलो की सेनाएँ भी इसी के सामने होकर निकली होगी—वे सेनाएँ जिनमे वेश्याएँ, नर्तकाएँ और स्त्रियाँ भी रणक्षेत्र पर जाती थी और रणक्षेत्र को भी विलास-भूमि में परिणत कर देती थी। यदि आज यह दरवाज़ा अपने संस्मरण कहने लगे, पत्थरो का यह ढेर बोल उठे, तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जावे और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियाँ ठीक की जा सके।

यह एक विजय-तोरण है, खानदेश की विजय का एक स्मारक है। किन्तु यदि देखा जाय तो यह दरवाज़ा अकबर द्वारा भारतीय सभ्यता पर प्राप्त की गई विजय का ही एक महान् स्मारक है। अकबर ने अपने हृदय की विशालता को इस दरवाज़े की विशालता मे व्यक्त किया है।

"यह संसार एक पुलिया है, इसके ऊपर से निकल जा, किन्तु

इस पर घर बनाने का विचार मन में न ला । जो यहाँ एक घटा भर भी ठहरने का इरादा करेगा वह चिरकाल तक यहाँ ही ठहरने को उत्सुक हो जावेगा । सासारिक जीवन तो एक घडी भर का ही है, उसे ईश्वर-स्मरण तथा भगवद्भक्ति में विता; ईश्वरोपासना के अतिरिक्त सब कुछ व्यर्थ है, सब कुछ असार है ।"

सासारिक जीवन की असारता सम्बन्धी इन पक्तियो को एक विजय-तोरण पर देख कर कुतूहल होता है । अकवर मानव जीवन के रहस्य को ढूंढ निकालने तथा दो पूर्णतया विभिन्न सभ्यताओ का मिश्रण करने निकला था, किन्तु वह वास्तविक वस्तु तक नही पहुँच पाया, मृगतृष्णा के जल की नाईं उन्हे ढूंढता ही रहा और उसे अन्त तक उनका पता न मिला । भोले भाले बालक की तरह उसने हाथ फैलाकर अनजाने ही कुछ उठा लिया, वह सोचता था कि उसे उस रहस्य का पता लग गया, वह इष्ट वस्तु को पा गया, किन्तु जिसे वह रत्न समझे बैठा था वह था काँच का टुकडा । सारे जीवन भर अकवर यही सोचता रहा कि उसे इच्छित रत्न प्राप्त हो गया और उसी खयाल से वह आनन्दित होता था ।

जीवन भर अकवर भारतीय तथा मुस्लिम सभ्यताओ के सम्मिश्रण का स्वप्न देखता रहा । यह एक सुखद स्वप्न था । अत जव अकवर के उस मानव-जीवन-स्वप्न का अन्त हुआ तव सभ्यता की यह स्वप्निल विजय भी नष्ट हो गई और वह सम्मिश्रण केवल एक स्वप्न-वार्ता, नानी की एक कहानी मात्र वन गई । वुलन्द दरवाजा उसी सुखद स्वप्न की एक स्मृति है, एव इसे विजय-तोरण न कह कर "स्वप्न-स्मारक" कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

उस दरवाजे मे होकर, उस स्वप्न को याद करते हुए, हम एक आँगन में जा पहुँचते है, सामने ही दिखाई पडती है एक सुन्दर श्वेत कब्र । यह उस साधु की समाधि है जिसने अपने पुण्य को देकर

मुगल घराने को आरम्भ में ही निर्मूल होने से बचाया था। अपनी सुन्दरता के लिए, अपनी कला की दृष्टि से यह एक अनुपम अद्वितीय कृति है। समस्त उत्तरी भारत के भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी हिन्दू-मुसलमान आदि प्रति वर्ष इस कब्र पर खिचे चले आते हैं, वे सोचते हैं कि जिस व्यक्ति ने जीते जी अकबर को भिक्षा दी, क्या उसी व्यक्ति की आत्मा स्वर्ग में बैठी उनकी छोटी सी इच्छा भी पूर्ण न कर सकेगी ?

× × ×

और सामने ही है वह मसजिद, जो यद्यपि पूर्णतया मुस्लिम ढग की है, और जो अपनी सुन्दरता के लिए भी बहुत प्रख्यात नहीं है, तथापि वह एक ऐसी विशेषता के लिए विख्यात है जो किसी दूसरे स्थान को प्राप्त नहीं हुई। इसी मसजिद ने एक भारतीय मुसल्मान सम्राट् को उपदेशक के स्थान पर खड़ा होकर प्रार्थना करते देखा था। भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास में यह एक अनोखी अद्वितीय घटना थी, और वह घटना इसी मसजिद में घटी थी।

अकबर को सूझी थी कि इस्लाम धर्म की असहिष्णुता को मिटा दे, उसकी कठोरता को भारतीय सहिष्णुता की सहायता से कम कर दे। क्यों न वह भी प्रारम्भिक खलीफाओं के समान स्वयं धर्माधिकारी के उच्चासन पर खड़ा होकर सच्चे मानव धर्म का प्रचार करे उसके साथी अबुल फज़्ल और फैज़ी ने उसके आदर्श को सराहा। और उस दिन जब पूरी पूरी तैयारियाँ हो गई तब अकबर पूर्ण उत्साह के साथ उस उच्चासन पर चढ़ कर प्रार्थना करने लगा —

"उस जगत्-पिता ने मुझे साम्राज्य दिया। उसने मुझे बुद्धिमान्, धीर और शक्तिशाली बनाया। उसने मुझे दया और धर्म का मार्ग सुझाया, और उसी की कृपा से मेरे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। कोई भी मानवीय जिह्वा उस परमपिता

के स्वरूप, गुणो आदि का पूरा पूरा वर्णन नहीं कर सकती। अल्ला-हो अकवर! ईश्वर महान् है।"

परन्तु . आह! अपने सम्मुख, अपने चरणो मे, हज़ारो पुरुषो को एक साथ ही उस परमपिता की उपासना मे रत, नतमस्तक होते देख कर अकवर स्तब्ध हो गया। अपने उस नए पद की महत्ता का अनुभव कर अकवर अवाक् रह गया, उसका गला भर आया, आँखे डवडवा गईं। आवेश के मारे कपडे मे अपना मुँह छिपा कर वह उस उच्चासन से उतर पडा। अकवर के अधूरे सदेश को काजी ने पूरा किया। अकवर ने स्वप्न देखा था, जिसमे वह एक महात्मा तथा नवीन धर्मप्रचारक की तरह खडा उपदेश दे रहा था और उसकी समस्त प्रजा स्तब्ध खडी उसके सदेश को एकाग्रचित्त से सुन रही थी। किन्तु जीवन की वास्तविकता की टक्कर खाकर उसका वह स्वप्न भग हो गया, उसे प्रथम वार ज्ञात हुआ कि स्वप्नलोक भौतिक ससार से दूर एक ऐसा स्थान है, जहाँ मनुष्य अपनी इच्छाओ तथा आकाक्षाओ के साथ स्वच्छन्दतापूर्वक खेल सकता है, किन्तु उन इच्छाओ का भौतिक जगत मे कुछ भी स्थान नही है।

भौतिक ससार को स्वप्नससार मे परिणत करना मृगमरीचिका से पानी पीने की दुराशा करने के समान है। जो इसे सावने का प्रयत्न करता है वह इस समार मे उन्मत्त या विगडे दिमागवाला पागल कहलाता है। इस भौतिक ससार मे आकर वह स्वप्नलोक सामारिक जीवन की भीपण चोटे न सहकर चूर चूर हो जाता है, और मनुष्य का वह छोटा सा हृदय उन भग्नावशेपो पर रोता है और उसी दुख से विदीर्ण होकर टूक टूक हो जाता है। सम्भव है मनुष्य अपने लिए एक नया स्वप्नलोक निर्माण कर सके, किन्तु उसे नया हृदय कहाँ मिलेगा, जिसको प्राप्त कर वह अपने टूटे हुए हृदय को भूल सके, अपने पुराने घावो को भर दे और उसके वाद उस नये

स्वप्नलोक में सुखपूर्वक विचर सके। टूटे हुए हृदय को समेटे अपने भग्न स्वप्नससार की स्मृति का भार उठाए नवीन स्वप्नलोक में विचरना एक असम्भव बात है।

× × ×

और यही है उस अकबर का दीवान खास। बाहर से तो एक साधारण दुर्मंजिला मकान देख पड़ता है, किन्तु सचमुच मे यह भारतीय कला का एक अद्भुत नमूना है। एक ही स्तंभ पर सारी ऊपरी मजिल खडी है। उसे निर्माण करने मे भारतीय कारीगरो ने बहुत कुछ बुद्धि व्यय की होगी। अकबर के समय इस मकान में क्या होता था ? इस विषय पर इतिहासकारो में मतभेद है कि यही धार्मिक वाद-विवाद होते थे या नही। कुछ का कथन है कि इसी महान् स्तभ पर बैठ कर अकबर विभिन्न धर्मानुयायियो के कथन सुना करता था, और वे धर्मानुयायी नीचे चारों ओर बैठे क्रम से अपने अपने धर्म की व्याख्या करते थे।

अकबर का मस्तिष्क विश्व-बंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के विचारो का पूर्ण आगार था। भिन्न-भिन्न धर्मों का भीषण सघर्ष देख कर उसके इन विचारो को भयकर ठेस लगती थी, कठोर आघात पहुँचता था। कुछ ऐसे मूल तत्त्वो का संग्रह कर वह एक ऐसे मत को प्रारम्भ करना चाहता था, जहाँ किसी भी प्रकार का वैषम्य न हो, जिसमें कोई धार्मिक सकीर्णता न पाई जावे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह भिन्न धर्मानुयायियो के कथन सुना करता था। उस महान् स्तम्भ पर स्थित अकबर अन्त में एक पूर्ण सत्य को पा गया। उस महान् स्तम्भ की ही तरह "ईश्वर एक है" इस एक सत्य पर ही अकबर ने दीन-ए-इलाही का महान् भवन निर्माण किया। ज्यो ज्यो यह स्तम्भ ऊपर चढ़ता जाता है, त्यो त्यो उसका आकार बढ़ता जाता है, और अन्त मे ऊपर पहुँच कर एक ऐसा स्थान आता है, जहाँ पर सब धर्मानुयायी समान अवस्था में भाई-भाई की तरह

मिल सकें। उस महान् धर्म दीन-ए-इलाही में जा पहुँचने के लिए अकबर ने चार राहे बनाई जो हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और ईसाइयो को सीधा विश्व-बन्धुत्व की उस विशद परिधि मे ले जा सकें।

यह दीवान खास एक तरह से अकबर के दीन-ए-इलाही का मूर्त्तिमान् स्वरूप है। बाह्य दृष्टि से यह एक साधारण वस्तु देख पडती है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह अपने ढग का निराला ही है। इसी भवन मे दीन-ए-इलाही का प्रारम्भ हुआ था, और इसी भवन के समान यद्यपि ससार विश्व-बन्धुत्व की महान् भावना को आश्चर्य-चकित होकर देखता है, तथापि एक अव्यवहारिक आदर्श मान कर उसे प्राप्त करने का वह प्रयत्न नही करता। दीन-ए-इलाही के समान ही यह भवन एक परित्यक्त उपेक्षित तथापि एक सपूर्ण आदर्श है।

सीकरी के खण्डहर विश्व-बन्धुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के उस नवजात आदर्श शिशु की श्मशान-भूमि है। मध्यकालीन भारत ने उसे गला घोट कर मार डाला और वही दफना दिया। अपने प्यारे बच्चे की मृत्यु पर उसकी माता, जगत-शान्ति, हाहाकार करती है, और रात्रि के समय जब समस्त ससार शान्त सो जाता है, और सुदूर आकाश से जब तारागण इस दु खी लोक को ताकते है तथा इसकी दशा पर मूक रुदन करते है, तब आज भी उन खण्डहरो मे उस दुखिया माता का सिसकना सुनाई देता है। वेचारी जगत-शान्ति उसासे भर कर रह जाती है, अपने प्यारे वच्चे की कब्र पर दो आँसू बहा देती है। परन्तु ससार तो अपने हाल मे ही मस्त चलता जाता है। कौन सहानुभूति करता है उस दुखिया माता के साथ ? कौन उस निरीह बच्चे की अकाल मृत्यु पर शोक प्रकट करने का कष्ट उठाता है ? करुणा करुणा, ससार ने तो उसे राज्यश्री की उन्मत्त लाली मे, उसके लिए वलिदान किए गए पुरुषो के गरम गरम तपतपाते खून मे डुबो दिया।

× × ×

दीवान खास के पास ही वह चौकोर चबूतरा है, जहाँ बादशाह अपनी सम्राज्ञियों तथा अपने प्रेमी मित्रो के साथ जीवित गोटो का चौसर खेला करते थे। प्रत्येक गोट के स्थान पर एक सुन्दर नवयुवा दासी खडी रहती थी। पूर्णिमा की रात को जब समस्त ससार पर शीतल चाँदनी छिटकी होगी, उस समय उस स्थान पर चौसर का वह खेल कितना मादक रहा होगा। राजमद की मस्ती पर मदिरा की मादकता, और उस पर यह दृश्य..... ओह! कुछ ख़याल तक नही हो सकता उस खेल के आनन्द का तथा उस स्थान के उन मस्ताने वातावरण का। अकबर के मदमाते मस्तिष्क की यह एक अनोखी सूझ थी। जहाँ तक पढा या सुना है, ससार के इतिहास में अकबर के अतिरिक्त किसी ने भी जीवित गोटो का ऐसा चौसर नही खेला।

यो तो प्रत्येक शासक अपनी प्रजा के जीवन, उसकी स्वतन्त्रता तथा उसके समस्त कार्यो के साथ खिलवाड किया करता है। एकाध शासक ही ऐसा होगा, जिसे यह मालूम हो कि उसकी आज्ञाओ का पालन करने मे शासितो पर क्या क्या बीतती होगी। जिन शासको ने कभी भी आज्ञापालन का अभ्यास नही किया, जिन्होने अपने बाल्य-काल से ही मानव जीवन के साथ खिलवाड किया, उनके लिए मानव जीवन केवल आमोद-प्रमोद की वस्तु है। वे दूसरो के जीवन के साथ जी भर कर खेलते है, पर उन बेचारो को यह मालूम नही कि उनका खिलवाड़ शासितो के लिए कितना भयकर होता है।

परन्तु अकबर का यह खिलवाड उतना ही अहिंसक था, जितनी कि स्वप्न की लडाई होती है। संसार के लिए तो वह एक स्वप्न ही था। कुछ ही वर्षो के लिए और तब भी इनी-गिनी बार ही ससार ने यह दृश्य देखा। वह खेल एक अतीत स्मृति हो गई। अकबर के स्वप्नलोक का एक अनोखा दृश्य था। स्वप्नलोक के रगमंच पर होने वाले नाटको की एक विशिष्ट वस्तु थी। अकबर की

रगरेलियो के विस्तृत आयोजन की एक अद्वितीय मनोरजक विशेपता थी।

× × ×

और इस स्वप्नलोक मे एक स्थान वह भी है, जहाँ अकवर अपनी सारी श्रेष्ठता, अपने सारे सयानेपन को भूल कर कुछ समय के लिए आँखमिचौनी खेलने लगता था। अकवर के वक्ष स्थल में भी एक छोटा सा हृदय धुकधुकाता था। अपने महान् उच्चपद की महत्ता का भार निरन्तर वहन करते करते कई वार वह शैथिल्य का अनुभव करता था। आठो पहर सम्राट् रह कर, मानव जीवन से दूर गौरव और उच्च पद के ऊसर रेगिस्तान मे पडा पडा अकवर तडपता था, उसका हृदय उन कृत्रिम वन्धनो से जकडा हुआ फडफडाता था। इसी कारण जव उस छोटे हृदय मे विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तब कुछ समय के लिए अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रख कर वह सम्राट् भी वालको के उस सुखपूर्ण भोले भाले ससार में घुस पडता था, जहाँ मनुष्य मात्र, चाहे वह राजा हो या रक, एक समान है और सव साथ ही खेलते है। वालको के साथ खेल कर अकवर मानव जीवन के कठोर सत्यो के साथ आँखमिचौनी खेलता था। अकवर को स्वप्नलोक मे भी खेल सूझा। यो वालको के साथ उनके उस अनोखे लोक में विचर कर अकवर वह जीवन-रस पीता था, जिसके विना साम्राज्य के उस गुरुतम भार से दव कर वह कभी का इस ससार से विदा हो गया होता।

× × ×

स्वप्न ससार का वह स्वप्नागार—वह ख़्वावगाह—एक अनोखा स्थान है। स्वप्नलोक मे रहते हुए भी अकवर की स्वप्न देखने की लत नही छूटी। कल्पनालोक मे विचरने तथा स्वप्न देखने की लत एक वार पडी हुई किसकी छूटी है? यह वह मदिरा है जिसका प्याला एक वार मुँह से लगने पर कभी भी अलग नही होता, कभी भी

खाली रहने नही पाता। स्वप्नलोक में पडा पड़ा अकबर वास्तविक जीवन का स्वप्न देखता था। इस लोक मे मस्त पडा था, किन्तु वह सम्राट् था, वास्तविक संसार को किस प्रकार भुलाता? भौतिक ससार के इन कार्यों में उसे निरंतर लगे रहना पडता था। ऐश्वर्य और विलासिता के सागर में गर्क रहते हुए भी उसे एक विशाल साम्राज्य पर शासन करना पड़ता था। साम्राज्य पर शासन करना तथा विस्मृति-मदिरा पीकर ऐश्वर्य-सागर में गोते लगाना दो ध्रुवो की नाईं विभिन्न है। अतएव जब अकबर की इच्छा हुई कि वह प्रेम-महोदधि मे गोता लगावे, कुछ काल के लिए विस्मृतिलोक मे घूमे तब तो उसने सासारिक बातो को, साम्राज्य-संचालन के कार्य को, एक स्वप्न समझा। स्वप्नलोक के स्वप्नागार में पडा अकबर साम्राज्य-सचालन का स्वप्न देखा करता था। राज्य-कार्य करते हुए भी सुख-भोग का मद न उतरने देने के लिए अकबर ने इस स्वप्नागार की सृष्टि की थी।

× × ×

सीकरी का सीकर सूख गया, उसके साथ ही मुस्लिम साम्राज्य का विशाल वृक्ष भी भीतर ही भीतर खोखला होने लगा। करोडो पीडितो के तपतपाए आँसुओ से सींचे जाकर उस विशाल वृक्ष की जडे मुर्दा होकर ढीली हो गई थी, अत जब अराजकता, विद्रोह तथा आक्रमण की भीषण आँधियाँ चलने लगी, मृत्यु की चमचमाती हुई चपला चमकी, पराजय रूपी वज्रपात होने लगे तब तो वह साम्राज्य-रूपी वृक्ष उखड कर गिर पडा, टुकड़े टुकड़े होकर बिखर गया, और उसके अवशेष, विलास और ऐश्वर्य का वह भव्य ईंधन, असहायों के निश्वासों तथा शहीदों की भीषण फुँकारों से जल जल कर भस्म हो गए। जहाँ एक सुन्दर वृक्ष खडा था, जो संसार में एक अनुपम वस्तु थी, वहाँ कुछ ही शताब्दियों में रह गए, गम्भीर गह्वर उस वृक्ष के कुछ खोखले सूखे हुए जर्जर बिखरे टुकडे तथा उस विशाल वृक्ष

की वह मुट्ठी भर भस्म। सीकरी के खण्डहर उसी भस्म को रमाए खडे है।

× × ×

सब कुछ सपना ही तो था देखते ही देखते विलीन हो गया। दो आँखो की यह सारी करामात थी। प्रथम तो एकाएक झोका आया, अकबर मानो सोते से जग पडा, स्वप्नलोक को छोड कर भौतिक ससार मे लौट आया। स्वप्न भग हो गया और साथ ही स्वप्नलोक भी उजड गया, और तब रह गई उनकी एकमात्र शेष स्मृति। किन्तु दो आँखें—अकबर की ही आँखे—ऐसी थी जिन्होने यह सारा स्वप्न देखा था, जिनके सामने ही इस स्वप्न का सारा नाटक—कुछ काल के लिए ही क्यो न हो—एक सुन्दर मनोहारी नाटक खेला गया था, जिसमे अकबर स्वय एक पात्र था, उस स्वप्नलोक के रगमच पर पूरी शान और अदा के साथ अपना पार्ट खेलता था। उन दो आँखो के फिरते ही, उनके बन्द होने के बाद उस स्वप्न की रही-सही स्मृतियाँ भी लुप्त हो गई। जो एक समय सच्ची घटना थी, जो बाद मे स्वप्न मात्र रह गया था, आज उसका कुछ भी शेप न रहा। अगर कुछ बाकी बचा है तो केवल वह सुनसान भग्न रगमच, जहाँ यह दिव्य स्वप्न आया था, जहाँ जीवन का यह अद्भुत रूपक खेला गया था, जहाँ कुछ काल के लिए समस्त ससार को भूल कर अकबर ऐश्वर्य-सागर मे गोते लगाने के लिए कूद पडा था, जहाँ अकबर के मदमाते यौवन की अक्षय कामनाओ और उद्दीप्त वासनाओ ने नग्न नृत्य किया था, और जहाँ वह महान् भारतविजयी सम्राट्, अपनी महत्ता को भूल कर, अपने गौरव को ताक मे रख कर एक साधारण मानव बन जाता था, रगरेलियाँ करता था, बालक की तरह उछलता था, जीवन के साथ आंखमिचौनी खेलता था और अमरत्व के सपने देखता था। सीकरी ही वह स्थान है, जिसे देख कर मालूम होता है कि

मनुष्य कितना ही महान् और बडा क्यो न हो जावे, उसकी भी छाती मे एक छोटा-सा कोमल भावुक हृदय धुकधुकाता है, उस दिल मे भी अनेक बार वासनाओं तथा आकांक्षाओ के भीषण सग्राम होते है, ऐसे पुरुष को भी मानवी दु:ख-दर्द, सांसारिक कामनाएँ तथा भौतिक वासनाएँ सताती है।

× × ×

स्वप्न ही तो था। बढते हुए वैभव के साथ कमल की नाई यह नगरी बढी थी। किन्तु लुप्त हो गया उसका वह वैभव, अकबर लौट गया भूतो की ओर। परन्तु आज भी उन सूखे पकजो के अवशेष कीचड मे धँसे हुए वही पडे है। पकपूर्ण पृथ्वी का हृदय भी पंकजो के इस पतन को देख कर भग्न हो गया, आँसुओ का प्रवाह उमड पडा, परन्तु वे आँसू भी शीघ्र ही सूख गए, उस जीवनपूर्ण सर की सतह सूख कर खण्ड खण्ड हो गई है।

वैभव से विहीन सीकरी के वे सुन्दर आश्चर्यजनक खण्डहर मनुष्य की विलास-वासना और वैभव-लिप्सा को देख कर आज भी वीभत्स अट्टहास करते है। अपनी दशा को देख कर सुध आती है उन्हे उन करोडो मनुष्यो की, जिनका हृदय, जिनकी भावनाएँ, शासको, धनिको तथा विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली गई थी। आज भी उन भव्य खण्डहरो मे उन पीडितों का रुदन सुनाई देता है। अपने गौरवपूर्ण भूतकाल को याद कर वे निर्जीव पत्थर भी रो पडते है। अपने उन वाल-वैधव्य को स्मरण कर वह परित्यक्ता नगरी उसासे भरती है। विलास-वासना, अतृप्त कामना तथा राजमद के विष की बुझाई हुई ये उसासें इतनी विषैली है कि उनको सहन करना कठिन है। उन्ही आहो की गरमी तथा विष मे मुगल साम्राज्य भस्मीभूत हो गया। अपनी दुर्दशा पर टपके हुए आँसुओ के उस नम्र प्रवाह मे रहे-सहे भग्नावशेष भी बह गए।

× × ×

एक नजर तो देख लो इस मृत शरीर को, अकवर के उस भग्न स्वप्न-ससार के उस सुनसान रगमच को, अकवर के स्वप्नलोक के उन टूटे फूटे अवशेषो को। अकवर के ऐश्वर्य-विलास के इस लोक को उजडे शताब्दियाँ बीत गई, किन्तु उसकी ऐश्वर्य-इच्छा, विलास-वासना, वैभव-लिप्सा एव कामना-कुंज का वह मकवरा आज भी खडा है। सीकरी के वे भव्य खण्डहर मानवीय इच्छाओ, मनुष्य की सुख-वासनाओ तथा गौरव की आकाक्षाओ की श्मशान भूमि है। मानवीय अतृप्त वासनाओ का वह करुण दृश्य देख कर आज वे पाषाण भी क्षुब्ध हो जाते है। अपने असमय पतन पर टूटे हुए दिलो की आहें आज भी उन भग्न प्रासादो से सन सन करती हुई निकलती है।

अकवर ने स्वप्नलोक निर्माण किया था, किन्तु भौतिक जीवन के कठोर थपेडे खाकर वह भग हो गया। अपनी कृति की दुर्दशा, तथा अपनी आशाओ और कामनाओ को निष्ठुर ससार द्वारा कुचले जाते देख कर अकवर रो पडा। उसका सजीव कोमल हृदय फट कर टुकडे टुकडे हो गया। वे टुकडे सारे भग्न स्वप्नलोक मे बिखर गए, निर्जीव होकर पथरा गए। सीकरी के लाल लाल खण्डहर अकवर के उस विशाल हृदय के रक्त से सने हुए टुकडे है। टुकडे टुकडे होकर अकवर का हृदय निर्जीव हो गया, निरन्तर ससार की मार खाकर वह भी पत्थर की तरह कठोर हो गया। जिस हृदय ने अपना यौवन देखा अपने वैभवपूर्ण दिन देखे, जो ऐश्वर्य मे लोटता था, स्नेह-सागर मे जो डुवकियाँ लगाता था, राज्यश्री की गोद मे जिसने वर्षो विश्राम किया, मद से उन्मत्त जो वरसो स्वप्नससार के उस सुन्दर लोक मे विचरा, वही भग्न, जीर्ण-शीर्ण, पथराया हुआ, शताब्दियो से खडा सर्दी, गर्मी, पानी और पत्थर की मार खाकर भी चुप है।

× × ×

शताब्दियाँ बीत गई और आज भी सीकरी के वे सुन्दर रँगीले

खण्डहर खड़े हैं। उस नवजात शिशु नगरी ने केवल पन्द्रह वर्ष ही शृंगार किया, और फिर उसके प्रेमी ने उसे त्याग दिया, उसने उसे ऐसा भुला दिया कि कभी भूल से भी लौट कर मुंह नहीं दिखाया। ऐश्वर्य और विलास में जिसका जन्म हुआ था, अनन्तयौवना राज्यश्री ने जिसे पाला-पोसा था, एक मदमाते युवा सम्राट् ने जिसका शृगार कराने में अपना सर्वस्व लुटा दिया था और जिसकी अनुपम सुन्दरता पर एक महान् साम्राज्य नाज़ करता था, उससे अपने प्रेमी द्वारा ऐसा तिरस्कार—घोर अपमान—नहीं सहा गया। अकबर के समय मे ही उसने वैभव को त्याग कर विधवा वेश पहिन लिया था। बिछुए फेंक कर उसने बिछुआ हृदय से लगाया। और अकबर की मृत्यु होते ही तो सब कुछ लुट गया, हृदय विदीर्ण हो गया, शोक के मारे फट गया, अंग क्षत-विक्षत हो गए, आँखे पथरा गई और आत्मा अनन्त मे विलीन हो गई। भारत विजेता, मुगल साम्राज्य के निर्माता, महान् अकबर की प्यारी नगरी का वह निर्जीव शरीर शताब्दियो से पडा धूल-धूसरित हो रहा है।

× × ×

सर सर करती हुई हवा एक छोर से दूसरे छोर तक निकल जाती है और आज भी उस निर्जीव सुनसान नगरी में फुसफुसाहट की आवाज़ में डरता हुआ कोई पूछता है—"क्या अब भी मेरे पास आने को वह उत्सुक है?" बरसो, शताब्दियो से वह उसकी बाट देख रही है, और अब. .रह गया है उसका वह अस्थिपञ्जर। उस छिटकी हुई चाँदनी में तारागण टिमटिमाते हुए मुस्करा कर उसकी ओर इंगित करते हैं—"क्या सुन्दरता की दौड़ उस अस्थिपंजर तक ही है?" और प्रति वर्ष जब मेघदल उन खण्डहरो पर होकर गुजरता है तब वह पूछ बैठता है—"क्या कोई सन्देशा भिजवाना है?" और तब उन खण्डहरों में गहरी निश्वास सुन पड़ती है और उत्तर मिलता है —"अब किस दिल से उसका स्वागत करें?" परन्तु दूसरे ही क्षण

उत्सुकता भरी काँपती हुई आवाज मे एक प्रश्न भी होता है—"क्या अब भी उसे मेरी सुध है ?"

परन्तु विस्मृति का वह काला पट ! दर्शक के प्रश्न के उत्तर मे गाइड अपनी टूटी फूटी अग्रेजी मे कहता है—"इस नगरी को हिन्दुस्तान के बादशाह शाहशाह अकबर ने कोई साढे तीन सौ वर्ष पहिले बनवाया था"।

अवशेष

अवशेष

महान् मुगल सम्राट् अकबर का प्यारा नगर—आगरा—आज मृतप्राय सा हो रहा है। उसके ऊबड़-खाबड़ धूल भरे रास्तों और उन तंग गलियों में यह स्पष्ट देख पड़ता है कि किसी समय यह नगर भारत के उस विशाल समृद्धिपूर्ण साम्राज्य की राजधानी रहा था, किन्तु ज्यों ज्यों उसका तत्कालीन नाम "अकबराबाद" भूलता गया त्यों त्यों उसकी वह समृद्धि भी विलीन होती गई। इस नगरी के वृद्ध क्षीण हृदय जुमा मस्जिद में अब भी जीवन के कुछ चिह्न देख पड़ते हैं, किन्तु इसका बहुत कुछ श्रेय मुस्लिम काल की उन मृतात्माओं को है, अपने अंचल में समेट कर भी विकराल मृत्यु जिनको मानव-समाज के स्मृतिसंसार से सर्वदा के लिए निर्वासित नहीं कर सकी; काल के क्रूर हाथों उनका नश्वर शरीर नष्ट हो गया, सब कुछ लोप हो गया, किन्तु स्मृतिलोक में आज भी उनका पूर्ण स्वरूप विद्यमान है।

मुगल साम्राज्य भंग हो गया किन्तु फिर भी उन दिनों की स्मृतियाँ आगरा के वायुमण्डल में रम रही है। जमीन से मीलों ऊँची हवा में आज भी ऐश्वर्य-विलास की मादक सुगन्ध, भग्न प्रेम या मृत आदर्शों पर बहाए गए आँसुओं की वाष्प, तथा उच्छ्वासों और उसासों से तप्त वायु फैला हुआ है। भग्न मानव-प्रेम की वह समाधि, मुगल साम्राज्य के आहत यौवन का वह स्मारक, ताज, आज भी अपने आँसुओं से तथा अपनी आहों से आगरा के वायुमण्डल को वाष्पमय कर रहा है। आज भी उन चिरविरही प्रेमी के आँसुओं का सोता यमुना नदी में जाकर अदृश्य रूप से मिलता है। ताज में

दफनाए गए मुगल सम्राट् के तडपते हुए युवा-हृदय की धुकधुकाहट से यमुना के वक्ष स्थल पर छोटी छोटी तरगे उठती है, और दूर दूर तक उसके निश्वासो की मरमर ध्वनि आज भी सुन पडती है। कठोर भाग्य के सम्मुख सुकोमल मानव हृदय की विवशता को देख कर यमुना भी हताश हो जाती है, ताज के पास पहुँचते पहुँचते वल खा जाती है, उस समाधि को छूकर तो उसका हृदय द्रवीभूत हो जाता है, आँसुओ का प्रवाह उमड पडता है, वह सीधा वह निकलता है।

आगरे का वह उन्नत किला, अपने गत यौवन पर इतरा इतरा कर रह जाता है। प्रात काल बाल सूर्य की आशामयी किरणे जब उस रक्तवर्ण किले पर गिरती है, तब वह चौक उठता है। उस स्वर्ण प्रभात मे वह भूल जाता है कि अब उसके उन गौरवपूर्ण दिनो का अन्त हो गया है, और एक बार पुन पूर्णतया कान्तियुक्त हो जाता है। किन्तु कुछ ही समय मे उसका सुख-स्वप्न भग हो जाता है, उसकी वह ज्योति और उसका वह सुखमय उल्लास, उदासी तथा निराशापूर्ण सुनसान वातावरण मे परिणत हो जाते है। आशापूर्ण हर्ष से दमकते हुए उस उज्ज्वल रक्तवर्ण मुख पर पतन की स्मृति-छाया फैलने लगती है। और दिवस भर के उत्थान के बाद सध्या समय अपने पतन पर क्षुब्ध मरीचिमाली जब प्रतीची के पादप-पुज में अपना मुख छिपाने को दौड पडते है और विदा होने से पूर्व अश्रु-पूर्ण नेत्रो से जब वे उस अमर करुण कहानी की ओर एक निराशापूर्ण दृष्टि डालते है तब तो वह पुराना किला रो पडता है, और अपने लाल लाल मुख पर, जहाँ आज भी सौदर्यपूर्ण विगत-यौवन की झलक देख पडती है अन्धकार का काला घूंघट खीच लेता है।

वर्त्तमानकालीन दशा पर ज्यो ही आत्मविस्मृति का पट गिरता है, अत चक्षु खुल जाते है और पुन पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो जाती है, उस पुराने रगमच पर पुन उस विगत जीवन का नाटक देख

पड़ता है। सुन्दर मुसम्मन बुर्ज को एक बार फिर उस दिन की याद आ जाती है, जब दुःख और करुणापूर्ण वातावरण में मृत्युशय्या पर पड़ा कैदी शाहजहाँ ताज को देख देख कर उसाँसें भर रहा था, जहान-आरा अपने सम्मुख निराशापूर्ण निस्सार करुण जीवन के भीषण तम को आते देख कर रो रही थी, जब उनके एकमात्र साथी, श्वेत पत्थरों तक के पाषाण-हृदय पिघल गए थे और जब वह रत्नजटित बुर्ज भी रोने लगा था, उसके आँसू ढुलक ढुलक कर ओस की बूंदों के रूप में इधर-उधर बिखर रहे थे।

और वह मोती मसजिद, लाल लाल किले का वह उज्ज्वल मोती .. आज वह भी खोखला हो गया। उसका ऊपरी आवरण, उसकी चमक-दमक वैसी ही है किन्तु उसकी वह आभा अब लुप्त हो गई। उसका वह रिक्त भीतरी भाग धूल-धूसरित हो रहा है, और आज एकाध व्यक्ति के अतिरिक्त उस मसजिद में परमपिता का भी नामलेवा नहीं मिलता। प्रति दिन सूर्य पूर्व से पश्चिम को चला जाता है, सारे दिन तपने के बाद संध्या हो जाती है, सिहर सिहर कर वायु बहती है, किन्तु ये शोषित प्रस्तर-खण्ड सुनसान अकेले ही खड़े अपने दिन गिना करते हैं। उस निर्जन स्थान में एकाध व्यक्ति को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि उन दिनों वहाँ आने वाले व्यक्तियों में से किसी की आत्मा अपनी पुरानी स्मृतियों के बन्धन में पड़ कर खिंची चली आई है। प्रार्थना के समय "मुअज़्ज़िन" की आवाज सुन कर यही प्रतीत होता है कि शताब्दियों पहिले गूंजने वाली हलचल, चहल-पहल तथा शोरगुल की प्रतिध्वनि आज भी उस सुन्दर परित्यक्त मसजिद में गूंज रही है।

उस लाल लाल किले में मोती मसजिद, खास महल आदि श्वेत भव्य भवनों को देख कर यही प्रतीत होता है कि अपने प्रेमी की, अपने सम्राट की मृत्यु से उदासीन होकर इस किले को वैराग्य हो गया, अपने रक्त शरीर पर श्वेत भस्म रमा ली। उस महान् किले का

यह वैराग्य, उस जीवनपूर्ण स्थान की यह निर्जनता, ऐश्वर्य-विलास से भरपूर सोते मे यह उदासी, और उन रगविरगे, चित्रित तथा सजे-सजाए महलो का यह नग्न स्वरूप, साधारण दर्शको तक के हृदयो को हिला देता है, तब क्यो न वह किला सन्यास ले ले ! सन्यास, सन्यास तभी तो चिरसहचरी यमुना को भी इसने लात लगा कर दूर हटा दिया, ठुकरा कर अपने से विलग किया, और अपने सारे बाह्य द्वार बन्द कर लिए । अब तो इनी-गिनी वार ही उसके नेत्र पटल खुलते है, ससार को दो नजर देख कर पुन समाधिस्थ हो जाता है वह किला । उस दु खी दिल को सताना, उस निर्जन स्थान को फिर मनुष्य की याद दिलाना भाई ! सम्हल कर जाना वहाँ, वहाँ के वे क्षुधित पाषाण, वह प्यासी भूमि न जाने कितनी आत्माओ को निगल कर, न जाने कितनो के यौवन को कुचल कर, एव न जाने कितनो के दिलो को छिन्न-भिन्न कर के उनके जीवन-रस को पीकर भी तृप्त नही हुई, आज भी वह आप के आँसुओ को पीने के लिए, कुछ क्षणो के लिए ही क्यो न हो आप की सुखद घडियो को भी विनष्ट करने को उतारू है ।

उस किले का वह लाल लाल जहाँगीरी महल—सुरा, सुन्दरी और सगीत के उस अनन्य उपासक की वह विलास-भूमि—आज भी वह यौवन की लाली से रँगा हुआ है । प्रति दिन अधकारपूर्ण रात्रि मे जब भूतकाल की यवनिका उठ जाती है, तब पुन उन दिनो का नाटच होता देख पडता है, जब अनेको की वासनाएँ अतृप्त रह जाती थी, कइयो की जीवन-घडियाँ निराशा के ही अन्धकारमय वातावरण में बीत जाती थी, और जब प्रेम के उस बालुकामय शान्ति-जल-विहीन ऊसर मे पडे पडे अनेको उसकी गरमी के मारे तडपते थे । उस सुनसान परित्यक्त महल में रात्रि के समय सुन पडती है उल्लासपूर्ण हास्य तथा विषादमय करुण क्रन्दन की प्रतिध्वनियाँ । वे अशान्त आत्माएँ आज भी उन वैभवविहीन खण्डहरो मे घूमती

है और सारी रात रो रो कर अपने अपार्थिव अश्रुओ से उन पत्थरो को लथपथ कर देती है। किन्तु जब धीरे धीरे पूर्व में अरुण की लाली देख पड़ती है, आसमान पर स्वच्छ नीला नीला परदा पडने लगता है, तब पुन. इन महलो में वही सन्नाटा छा जाता है, और निस्तव्वता का एकछत्र साम्राज्य हो जाता है। उन मृतात्माओ की यदि कोई स्मृति शेष रह जाती है तो उनके वे बिखरे हुए अश्रु-कण, किन्तु क्रूर काल उन्हे भी सुखा देना चाहता है। यहाँ की शाति यदि कभी भग होती है तो केवल दर्शको की पद-ध्वनि से तथा "गाइडो" की टूटी-फूटी अग्रेजी शब्दावली द्वारा। रात और दिन में कितना अन्तर होता है! विस्मृति के पट के इधर और उधर... एक ही पट की दूरी, वास्तविकता और स्वप्न, भूत तथा वर्तमान . कुछ ही क्षणों की देरी और हजारों वर्षो का सा भेद...कुछ भी समझ नही पडता कि यह है क्या।

उस मृतप्राय किले के अब केवल कंकालावशेष रह गए है; उसका हृदय भी बाहर निकल पडा हो ऐसा प्रतीत होता है। नक्षत्र-खचित आकाश के चँदवे के नीचे पडा है वह काले पत्थर का टूटा हुआ सिंहासन, जिस पर किसी समय गुदगुदे मखमल का आवरण छाया हुआ होगा, और जिस पत्थर तक को सुशोभित करने के लिए, जिसे सुसज्जित बनाने के वास्ते अनेकानेक प्रयत्न किए जाते थे, आज उसी की यह दशा है। वह पत्थर है, किन्तु उसमें भी भावुकता थी, वह काला है, किन्तु फिर भी उसमें प्रेम का शुद्ध स्वच्छ सोता बहता था। अपने निर्माता के वंशजो का पूर्ण पतन तथा उनके स्थान पर छोटे छोटे नगण्य शासकों को सिर उठाते देख कर जब उस किले ने वैराग्य ले लिया, अपने यौवनपूर्ण रक्तमय गात्रो पर भगवाँ डाल लिया, शोपन भस्म रमा ली, तब तो उसका वह छोटा हृदय भी क्षुब्ध होकर तड़प उठा, अपने आवरणो में से बाहर निकल पडा, वह बेचारा भी रो दिया। वह पाषाण-हृदय भी अन्त में विदीर्ण हो गया और उसमें से भी रक्त की

दो बूँदें टपक पडी। मुगलो के पतन को देखकर पत्थरो तक का दिल टूट गया, उन्होने भी रुधिर के आँसू बहाए परन्तु वे मुगल, उन महान् सम्राटो के वे निकम्मे वशज, ऐश्वर्य-विलास मे पडे सुखनीद सो रहे थे; उनकी वही नीद चिर निद्रा मे परिणत हो गई।

और वह शीशमहल, मानव-काचन-हृदय के टुकडो से सुशोभित वह स्थान कितना सुन्दर, दीप्तिमान, भीषण तथा साथ ही कितना रहस्यमय भी है! यौवन, ऐश्वर्य तथा राजमद से उन्मत्त सम्राटो को अपने खेल के लिए मानव हृदय से अधिक आकर्षक वस्तु न मिली। अपने विनोद के लिए, अपना दिल बहलाने के हेतु उन्होने अनेको के हृदय चकनाचूर कर डाले। भोले भाले हृदयो के उन स्फटिक टुकडो से उन्होने अपने विलास-भवन को सजाया। एक बार तो वह जगमगा उठा। टूट कर भी हृदय अपनी सुन्दरता नही खोते, उसके विपरीत रक्त से सने हुए वे टुकडे अधिकाधिक आभा-पूर्ण देख पडते है। परन्तु जब साम्राज्य के यौवन की रक्तिम ज्योति विलीन हो गई, जब उस चमकते हुए रक्त की लाली भी कालिमा मे परिणत होने लगी, तब तो मानव जीवन पर कालिमामयी यवनिका डालने वाली उस कराल मृत्यु का भयकर तमसावृत्त पटल उस स्थान पर गिर पडा, उस शीशमहल मे अन्धकार ही अन्धकार छा गया।

मानव हृदय एक भयकर पहेली है। दूसरो के लिए एक बन्द पुर्ज़ा है, उसके भेद, उसके भावो को जानना एक असम्भव बात है। और उन हृदयो की उन गुप्त गहरी दरारो का अन्धकार, एक हृदय के अन्धकार को भी दूर करना कितना कठिन होता है, और विशेषतया उन दरारो को प्रकाशपूर्ण बनाना और यहाँ तो अनेको मानव हृदय थे, सैकडो हजारो—और उन हृदयो के टुकडे, वे सिकुडे हुए रक्त से सने खण्ड उन्होने अपनी दरारो में सचित अन्धकार को उस शीशमहल में उँडेल दिया। मुगलो ने शीशमहल की

सृष्टि की, और सोचा कि प्रत्येक मानव हृदय में उन्ही का प्रतिबिम्ब दिखाई देगा परन्तु यह कालिमा और मानव हृदय की वे अनबूझ पहेलियाँ ..। मुगलो ने उमडते हुए यौवन मे, प्रेम के प्रवाह में एक चमक देखी और उसी से सन्तुष्ट हो गए। दर्शकों को भी सम्यक् प्रकारेण बताने के लिए, तथा उस अन्धकार को क्षण भर के लिए मिटाने के हेतु गन्धक जला कर आज भी ज्योति की जाती है। मुगलो के समान दर्शक भी उन काँच के टुकडो मे एक बार अपना प्रतिबिम्ब देख कर समझते है कि उन्होंने सम्पूर्ण दृश्य देख लिया। परन्तु उस अन्धकार को कौन मिटा सकता है? कौन मानव हृदय के तल को पहुँच पाया है? किसे उन छोटे छोटे दिलो का रहस्य जान पडा है? कौन उन टूटे हुए हृदयो की सम्पूर्ण व्यथा को, उनकी कसक को समझ सका है? यह अन्धकार तो निरन्तर बढता ही जाता है।

सुन्दरता मे ताज का प्रतियोगी, एतमादुद्दौला का मकबरा, भाग्य की चचलता का मूर्तिमान् स्वरूप है। यह राह भटकने वाले भिखारी का मकबरा, भूखो मरते तथा भाग्य की मार से पीडित रक की कब्र ऐसी होगी, यह कौन जानता था? यह श्वेत समाधि भाग्य के कठोर थपेडे खाए हुए व्यक्ति के सुखान्त जीवन की कहानी है। श्वेत पत्थर के इस मकबरे के स्वरूप मे सौभाग्य घनीभूत हो गया है। यौवन-मद से उन्मत्त साम्राज्य में नूरजहां के उत्थान के साथ ही वासनाओ के भावी अन्धड के आगम की सूचना देने वाली तथा उस अन्धड में भी साम्राज्य के पथ को प्रदीप्त करने वाली यह ज्योति मुगल स्थापत्य-कला की एक अद्भुत वस्तु है।

और इस मृतप्राय नगरी से कोई पांच मील दूर स्थित है यह स्मृति-विहीन पञ्जर। अपनी प्रियतमा नगरी की भविष्य में होने वाली दुर्दशा की आशंका तक से अनभिज्ञ होकर ही अकबर ने अपना अन्तिम निवासस्थान इस नगरी से कोसो दूर बनाने का आयोजन किया

था। अकबर का सुकोमल हृदय मिट्टी मे मिल कर भी अपनी कृतियो की दुर्दशा नही देख सकता था, और न देखना ही चाहता था। उस शान्त-वातावरण-पूर्ण सुरम्य उद्यान मे स्थित यह सुन्दर समाधि अपने ढग की एक ही है। अकबर के व्यक्तित्व के समान ही समाधि दूर से एक साधारण सी वस्तु जान पडती है, किन्तु ज्यो ज्यो उसके पास जाते है, उस समाधि भवन मे पदार्पण करते है, त्यो त्यो उसकी महत्ता, विशालता एव विशेषताएँ अधिकाधिक दिखाई पडती है। उस महान् अव्यवहारिक धर्म 'दीन-ए-इलाही' के इस एकमात्र स्मारक को निर्माण करने मे अकबर ने अनेकानेक वास्तुकलाओ के आदर्शों का अनोखा सम्मिश्रण किया था।

ध्रुव की ओर सिर किए अकबर अपनी कब्र मे लेटा था। एक ध्रुव को लेकर ही उसने अपने समस्त जीवन तथा सारी नीति की स्थापना की थी, और उसके उस महान् आदर्श ने, विश्व-बन्धुत्व के उस टिमटिमाते हुए ध्रुव ने मृत अकबर को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अकबर का वह छोटा सा शव उस विशाल समाधि मे भी नही समा सका, वह वहाँ शान्ति से नही रह सका। विश्व-प्रेम तथा मानव-भ्रातृत्व के प्रचारक अकबर के अन्तिम अवशेष, वे मुट्ठी भर हड्डियाँ भी विश्व मे मिल जाना चाहती थी। विशाल हृदय अकबर मर कर भी कठोर पत्थरो की उस विशाल, किन्तु आत्मा की दृष्टि से बहुत ही सकुचित, परिधि मे नही समा सका। अपने अप्राप्त आदर्शों की ही अग्नि मे जल कर उसकी अस्थियाँ भी भस्मसात् हो गई, और वह भस्म वायु-मण्डल मे व्याप्त होकर विश्व के कोने कोने मे समा गई। अकबर की हड्डियाँ भस्मीभूत हो गई, परन्तु अपने आदर्शों को न प्राप्त कर सकने के कारण उस महान् सम्राट् की वह प्रदीप्त हृदय-ज्वाला आज भी बुझी नही है, उस मिट्टी के दीपक-रूपी हृदय मे अगाध मानव स्नेह भरा है, उसमे सदिच्छाओ तथा शुभ भावनाओ की शुद्ध श्वेत वत्ती पडी है, और वह दिया तिल तिल

कर जलता है। वह टिमटिमाती हुई लौ आज भी अकबर की समाधि पर जल रही है, और धार्मिक संकीर्णता के अन्धकार से पूर्ण, विश्व के सदृश्य गोल तथा विशाल गुम्बज में वह उस महान् आदर्श की ओर इंगित करती है, जिसको प्राप्त करने के लिए शताब्दियो पहिले अकबर ने प्रयत्न किया था, और जिसे आज भी भारतीय राष्ट्र नही प्राप्त कर सका है।

मानव जीवन एक पहेली है, और उससे भी अधिक अनबूझ वस्तु है विधि का विधान। मनुष्य जीवन के साथ खेलता है, जीवन ही उसके लिए मनोरंजन की एकमात्र वस्तु है, और वही जीवन इस लोक मे फैल कर संसार-व्यापी हो जाता है। संसार उस बिखरे हुए जीवन को देख कर हँस देता है या ठुकरा देता है। परन्तु जीवन बीत चुकने पर जब मनुष्य उसे समेट कर इस लोक से विदा लेता है तब संसार उस विगत आत्मा के संसर्ग में आई हुई वस्तुओ पर प्रहार कर या उन्हे चूम कर समझ लेता है कि वह उन अन्तर्हित आत्मा के प्रति अपने भाव प्रकट कर रहा है। उन मृत व्यक्ति के पाप या पुण्य का भार उठाते है उसके जीवन से सम्बद्ध ईंट और पत्थर, उसकी स्मृतियो के अवशेष। किसका कृत्य और किसे यह दण्ड.. ..परन्तु यही संसार का नियम है, विधि का ऐसा ही विधान है।

बिखरे पडे है मुगल सम्राटो के जीवन के भग्नावशेष, उन मृतप्राय नगरो मे। जिन्होने उन नगरो का निर्माण किया था उनका अन्त हो गया, उनका नामलेवा भी न रहा। सब कुछ विनष्ट हो गया, वह गौरव, वह ऐश्वर्य, वह समृद्धि, वह सत्ता—सब विलीन हो गए। मुगल साम्राज्य के उन महान् मुगल सम्राटों की स्मृतियाँ, उन स्मृतियो के ये रहे-सहे अवशेष, यत्र-तत्र बिखरे हुए वैभवविहीन ये खण्डहर, उन सम्राटो के विलास-स्थान, ऐश्वर्य के ये आगार, उनके मनोभावो के ये स्मारक.... सब शताब्दियो से धूल-धूसरित

हो रहे है, पानी-पत्थर, सरदी-गरमी की मार सह रहे है। उन्हे निर्माण करने मे, उनके निर्माताओ के लिए विलास और सुख की सामग्री एकत्र करने मे जो-जो पाप तथा सहस्रो दरिद्रियो एव पीडितो के हृदयो को कुचल कर जो-जो अत्याचार किए गए थे, उन्ही सब का प्रायश्चित आगरे के ये भग्नावशेष कर रहे है। कब जाकर यह प्रायश्चित सम्पूर्ण होगा, यह कौन जानता है कि कुछ बता सके।

तीन कब्रें

तीन कब्रें

अनन्तयौवना राज्यश्री द्वारा पाले पोसे गए मुग़ल साम्राज्य का यौवन फूट निकला, अँगडाई लेकर उसने पैर पसारे। साम्राज्य के अग अग मे नवीन स्फूर्ति का रक्त दौड रहा था। उसका वक्ष स्थल फूल गया, धमनियो मे कम्पन होने लगा। भारतीय साम्राज्य के मुख पर नवयौवन की लाली फैलने लगी, उसके उन उजले उजले कपोलो पर गुलाबी रग के महलो की रक्तिम रेखाएँ यत्र-तत्र दिखाई देने लगी। राजधानी-रूपी हृदय की धडकन प्रारम्भ हुई। अपने उमडते हुए यौवन के साथ वह छोटा सा हृदय भी फैलने लगा।

वह मस्ताना यौवन था । धन-धान्य-पूर्ण साम्राज्य ने आँखें खोलीं तो देखा नवजीवन का वह सुनहला प्रभात। सौभाग्य के बाल रवि की लाल-लाल किरणो ने पूर्वी आकाश को रक्तवर्ण कर दिया, दुर्भाग्य-घन-घटा के कुछ अवशिष्ट यत्र-तत्र बिखरे टुकडे भी अब विलीन होने की चेष्टा कर रहे थे। और उस यौवन में नवयुवा साम्राज्य को अकबर ने पिलाई राजमद की वह लाल-लाल मदिरा। उसकी मदमाती सौरभ से ही अनुभवहीन युवा मस्त हो गया, और उसको पीकर तो बेसुधि बेतन्ह छा गई, यौवन की मस्ती पर राजमद का वह प्याला . . . ओह! बहुत था वह नशा, साम्राज्य तो बदहोश हो गया, मस्त होकर नशे में झूमने लगा।

और उन मदमाने दिनो मे अकबर ने पुत्र का मुंह देखा। यौवन की मस्ती मे झूमता हुआ, राजमद को पीकर उन्मत्त, निस्सार स्वप्नलोक में विचरने वाला अकबर ही तो सलीम का पिता था। उन सुनहले दिनो मे मादक यौवन से भरे उस मस्ताने वातावरण मे, राज्य-

श्री ने अपने लाडले सलीम को पाला पोसा। आशापूर्ण आकाश के उस जगमगाते हुए चँदवे के नीचे सलीम के बाल्यकाल के दिन बीते। ऐश्वर्य के उस विषैले किन्तु सुनहले चमचमाते हुए वातावरण मे उसका लालन-पालन हुआ।

बरसो बाद साम्राज्य-उद्यान का वह अनोखा सुन्दर पुष्प वसत की बयार के स्पर्श का अनुभव कर जब खिलने लगा तब तो अपने यौवन पर इठलाते हुए साम्राज्य ने उसका स्वागत किया, अनन्त-यौवना ने उसको चूम कर उसकी बलैय्याँ ली। युवा साम्राज्य के शाहजादे का यौवन था। ऐश्वर्य और विलासिता के मदमाते सौरभ ने सलीम को अशक्त कर दिया—सुखस्वप्न की मृगमरीचिका की ओर वह अनजाने खिचा चला गया, सुख-सरिता मे वह बह निकला।

× × ×

किन्तु खिलते हुए पुष्प की वह तडप, उमडते हुए यौवन की वह कसक शाहजादा बल खा खा जाता था। वह प्यासा हृदय प्रेम-जल की खोज मे निकला। सुख-स्वप्न-लोक मे उसने कितने ही दृश्य देखे थे, किन्तु उन्होने तो उमडते हुए यौवन की इस चिनगारी को अधिकाधिक प्रज्वलित किया। जीवन-प्रभात मे ओस-रूपी स्वर्गीय प्रेम-कणो को बटोरने के लिए वह पुष्प खिल उठा, पँखुडियाँ अलग अलग हो गईं। अपने दिल को हाथो मे लेकर सलीम प्रेमलोक मे सौदा करने को निकला।

प्यासे को पानी पिलाने वाला मिल ही तो गया। सलीम के हृदय-रूपी प्याले मे प्रेम-सलिल की दो बूंदे टपक ही तो पडी। उस तडपते हुए हृदय को एक आसरा मिला। चार आँखो का मिलन दो वन्द किन्तु उमडते हुए सोते खुल पडे। दो भोले भाले हृदयो का उलझ पडना, अनजाने बँध जाना, दो प्यासो का साथ बैठ कर एक ही सोते से प्रेम-जल पीना ऊपा की उन अधखुली पलको ने, सध्या की उस रक्तिम गोधूली ने, तथा शरद

की उस शुभ्र चाँदनी न देखा। किन्तु आह! यह सुख उनसे देखा न गया। अनारकली को खिलते देखकर चाँद जल उठा, उस ईर्ष्याग्नि में वह दिन दिन क्षीण होने लगा। ऊषा ने अनारकली की मस्ती से भरी अलसाई हुई उन अधखुली पलको को देखा और क्रोध के मारे उसकी आँख लाल हो गई। गोधूली ने यह अपूर्व सुखद मिलन देखा और अपने अचिरस्थायी मिलन को याद कर उसने अपने मुख पर निराशा का काला घूंघट खीच लिया।

साम्राज्य का शाहज़ादा . . और अनारकली पर मुग्ध हो . . , साम्राज्य, क़ठोर-हृदय साम्राज्य को यह बात ठीक न लगी। उन सुखद घडियो की बाट जोहना, वे तरसती हुई आखे, उनकी वह प्यासी दृष्टि, कुछ अवकही बाते, धडकता हुआ दिल, दो चुम्बन, पुन मिलने के वे वादे, वियोग पर वे दो आहे. . आह! इन सब का अन्त हो गया, उस भोली भाली बालिका को बलिदान कर डाला। प्रेम-मदिरा का वह छलकता हुआ प्याला पृथ्वीतल पर उँडेल दिया गया, वह मदिरा पृथ्वीतल में समा गई और वह प्याला . क्रूर काल ने उसे चूर चूर कर डाला। प्रेम की वेदी पर वह सुन्दर खिलती हुई कली कुचल दी गई। खिलने भी न पाई थी, उसकी वह कसक अभी मिटी न थी कि वह भूतकाल की वस्तु हो गई। कितनी निष्ठुरता... .कठोर निर्जीव साम्राज्य के लिए सुकोमल धडकते हुए हृदय का कुचला जाना, वारागना राज्यश्री को आकर्षित करने के लिए सच्ची प्रेमिका को बलिदान कर देना, . किन्तु यही संसार की रीति है।

और अनारकली ने सहर्ष आत्मसमर्पण किया। प्रेमाग्नि की उन लपलपाती हुई उद्दीप्त लौ में जल कर उस सुन्दर तितली ने अपना अस्तित्व मिटा दिया। प्रेम की वेदी पर अपनी हस्ती मिटा कर उसने अपने प्रेमी को बचा लिया। उसने जीवित समाधि ले ली, अपने धडकते हुए हृदय को लेकर, अपने जीवन की आकांक्षाओं

को निराशा के काले अचल मे समेट कर वह जगन्माता पृथ्वी मे समा गई। उसके उमडते हुए यौवन के वे अवशेप, खिलती हुई कली की वह तडप, आते हुए वसत की वह सुखदायक समीर, सुमधुर सगीत की वह प्रथम तान अकाल मे ही विलीन होकर ये चिरकालीन प्रकृति मे धीरे धीरे प्रस्फुटित हुए।

जहाँगीर के नवयुवा सुकोमल हृदय को भीपण चोट पहुँची। उसके छोटे से दिल मे गहरा घाव लगा, किन्तु वह तडप कर रह गया, विवश था। उसका रोप पानी पानी होकर वह निकला। किन्तु उसके भावो का वह प्रवाह भी अतृप्त प्रेमाग्नि की आँच न सह कर सूखता गया। दो आँसू टपके, कुछ आहे निकली। प्रेम-प्रभात का वह सुनहला आकाश छिन्न-भिन्न हो गया। उन सुखपूर्ण दिनो की, उस सुनहले प्रेमस्वप्न की अब शेप रह गई केवल कुछ कसक भरी स्मृतियाँ।

× × ×

और खिलते हुए प्रेम-पुष्प की वह समाधि, बलिदान की वह कब्र, वहाँ तब कुछ भी न था। बरसो बाद जब सलीम सिंहासनारूढ हुआ तो उसका वह मृत प्रेम पुन उमड पडा। उसके हृदय-ससार मे फिर जो बवण्डर उठा तो यह आँधी उसके जले हुए भावो की भस्म को भी यत्र-तत्र बिखेरने लगी। अपने हृदय के प्रथम व्रण की, अपने सुन्दर सुनहले जीवन-प्रभात की स्मृति का साकार स्वरूप, उनका स्मारक, देखने के लिए वह उत्सुक हो उठा। इतने बरसो बाद भी जहाँ उस मृत प्रेमिका के लिए स्थान था, जहाँ तब भी उसकी स्मृति विद्यमान थी, जहाँ तब भी अनन्त मे विलीन हो जाने वाली उस मृता प्रियतमा के लिए प्रेमाग्नि धधक रही थी——अपने उसी हृदय के अनुरूप उसने वह सुन्दर कब्र बनवाई। अनारकली की स्मृति बरसो विस्मृति के काले पट मे ढकी जहाँगीर के हृदय में रही——अब तो जहाँगीर ने अनारकली के अवशेपो को भी प्रेमस्मृति

के गाढ आलिंगन मे लिपटा लिया, समाधि-रूपी स्मारक के कठोर आलिंगन में उन्हें जकड लिया।

जहाँ प्रथम बार अनारकली दफनाई गई थी, कठिनाई से घूमते-घामते वहाँ पहुँच पाते है, किन्तु ज्योही वहाँ पहुँचते है हमे दिखाई देता है कि वह वहाँ नही है। जहाँ उसका एकछत्र राज्य था, जिस हृदय पर एक समय उसका ही अधिकार था, उस पर अब दूसरो का आधिपत्य होते देख कर कब्र में भी अनारकली का शव सिहर उठा, और भावावेश मे आकर उसका वह अस्थिपंजर भी वहाँ से उठ कर चल दिया। मानव हृदय की भूलने की लत का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण और कहाँ मिलेगा ?

संसार के लिए मानव जीवन एक खेल है, मनोरंजन की एक अद्भुत सामग्री है। मानव हृदय एक कौतूहलोत्पादक वस्तु है। उसे तडपते देख कर संसार हँसता है, उसके दर्द को देख कर उसे आनन्द आता है, और यदि संसार को मानव हृदय से भी अधिक आकर्षक कोई दूसरी वस्तु मिल जाय तो वह उसे भी भुला देगा ! कितनी बेदर्दी ! कितनी निष्ठुरता ! संसार का यह खिलवाड चोट खाए हुए मनुष्य को रुला देता है।

जो भारतीय साम्राज्य के शाहजादे की प्रेमपात्री थी, जिसके पैरो मे मुग़ल घराने का सिरमौर लोटता था, संसार ने उसी अनारकली को मृत्यु के बाद कब्र मे भी सुखपूर्वक नही सोने दिया, उसे उठाकर एक कोने मे पटक दिया, अपने स्मृतिलोक से ही नही, अपने हृदय से भी निकाल बाहर किया . . .और रावी की वह धारा, अनारकली के उस भग्न प्रेम पर बहाए गए आँसुओ का वह प्रवाह. . .वह भी उसे छोड चला। वे आँसू सूख गए, और उसका वह शुष्क वक्षस्थल आज नष्ट भ्रष्ट होकर सहस्र रेणु-कणो के रूप मे बिखरा पडा है।

संसार ने उसे भुला दिया। इस शहर ने, इस अनारकली गली

से, न जाने कितने आते है, और न जाने कितने चले जाते है, किन्तु कितनो को धधकते हुए चोट खाए हुए उस हृदय की याद आती है ? कितने ऐसे है जो उस कलिका के अकाल मे ही मुरझाने पर दो आँसू टपकाते है, दो उसासे भरते है ? अपनी अपनी आपत्तियो और निराशाओ का भार उठाए प्रत्येक मनुष्य चला जाता है, अपनी ही करुण कहानी को याद कर वह रोता है, कहाँ है उसके पास आँसुओ का वह अक्षय सागर कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्हे वहावे ?

× × ×

जहाँगीर के जीवन का यौवन-प्रभात प्रेम पर शहीद होने वाली प्यारी अनारकली के रुधिर से रँगा हुआ था। उस स्वप्नलोक मे उसके दिल के टुकडे ही यत्र-तत्र बिखरे पडे थे, अपने टूटे हृदय मे से टपक पडने वाली रुधिर की बूँदे धीरे धीरे उसके सारे जीवन को रँग रही थी। उसी लाली मे जहाँगीर गर्क हो गया। किन्तु समय के साथ जब धीरे धीरे यह लाली विलीन होने लगी, तव तो जहाँगीर ने प्याले मे मदिरा ढाली, उस मदिरा की लाली मे उसने सारे जग को देखा, अपने प्याले की उस लाली से उसने सारे जहान को रँग दिया। अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले उस प्याले को जी भर कर चूमा, और होते होते उस प्याले के प्रति जहाँगीर के हृदय मे इतना प्रेम उमडा कि वह स्वय एक प्याले मे कूद पडा। प्याला ! वह लाल लाल लबालब भरा प्याला ! आह ! वह कितना प्यारा था !

अपने जीवन-प्रभात मे ही वह अलसाया हुआ, चोट खाकर घायल पडा था। ससार के प्रति उदासीन, आँखे वन्द किए, वह पडा पडा अपने ही स्मृतिलोक मे घूमता था। पुरानी स्मृतियो को याद कर-कर वह झूमता था, रोता था, किन्तु ससार उसके प्रति उदासीन न था, भाग्य से यह देखा न गया कि जहाँगीर यो ही अकर्मण्य पडा विस्मरणीय विगत वातो को याद कर पुराने दिनो के सपने देखे।

राह-राह की भिखारिन ने उस अलसाए हुए जहाँगीर को ठोकर मार कर जगा दिया। वह युवा-सुन्दरी न जाने किन किन अज्ञात देशो मे घूमती-घामती शाहज़ादे की राह में आ पहुँची। सलीम तो उसे देख कर पागल हो गया; उसका छोटा सा हृदय पुन मचल गया। किन्तु भाग्य से कौन लड सका है? प्यासे को पानी का प्याला दिखा-दिखा कर उसे तरसाने मे ही उस कठोर नियति को आनन्द आता है। जिसे अपनाने के लिए वह उत्सुक हो रहा था, वह पराई हो गई, उसकी देखती आँखो विहार भेज दी गई। उसके चोट खाए हुए हृदय पर पुन आघात लगा, वह विप का घूँट पीकर रह गया।

उस सुन्दर मस्ताने यौवन-प्रभात की एक मनोहारी झलक ने, प्रेमोद्यान की मादक सुगन्धित समीर के एक झोके ने, खिलते हुए प्रेम-पुष्प की एक झाँकी ने, तथा मधुर रागिनी की प्रथम तान ने ही उस मदमाते शाहज़ादे को मतवाला बना दिया। प्याले पर प्याला ढल रहा था, और उस पर इस मधुर स्मृति का भार तथा भावी आशाओ की उत्सुकता . . शाहज़ादा पडा उस दिन की बाट जोहने लगा, जब वह स्वच्छन्द होकर अपनी आकांक्षाओ को पूर्ण कर सकेगा। मानवीय-भावरूपी सागर के वक्षस्थल पर एक बार लहरे उठ चुकी थी, वे कल्लोल कर कठोर भाग्य-रूपी किनारे पर टकरा कर खण्ड खण्ड होकर बिखर चुकी थीं। किन्तु उस कल्लोल की वह सुन्दर ध्वनि अब भी उसके कानो में गूंज रही थी। उस शाहज़ादे का हृदय-संसार शान्त होकर उस दिन की राह देख रहा था, जब पुन यवनिका उठेगी, जब पुन वे सुखद दृश्य देखने को मिलेंगे, और जब एक बार फिर अपने प्रेमी को देखकर उस प्रेमिका के वक्षस्थल मे भावों का बवण्डर उठेगा, उसके प्रेम का सागर उमड पडेगा, उसमें तरगे उठेंगी, और उन तरगों पर नृत्य करेगी वह प्रेम-सुन्दरी। सारा संसार जब स्तब्ध होकर उस दृश्य को देखेगा, और तब सलीम स्वयं अपनी प्रेयसी को गले से लगाने के लिए दौड कर

से, न जाने कितने आते है, और न जाने कितने चले जाते है, किन्तु कितनो को धधकते हुए चोट खाए हुए उस हृदय की याद आती है ? कितने ऐसे है जो उस कलिका के अकाल मे ही मुरझाने पर दो आँसू टपकाते है, दो उसासे भरते है ? अपनी अपनी आपत्तियो और निराशाओ का भार उठाए प्रत्येक मनुष्य चला जाता है, अपनी ही करुण कहानी को याद कर वह रोता है, कहाँ है उसके पास आँसुओ का वह अक्षय सागर कि वह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उन्हे वहावे ?

× × ×

जहाँगीर के जीवन का यौवन-प्रभात प्रेम पर शहीद होने वाली प्यारी अनारकली के रुधिर से रँगा हुआ था। उस स्वप्नलोक मे उसके दिल के टुकडे ही यत्र-तत्र बिखरे पडे थे, अपने टूटे हृदय मे से टपक पडने वाली रुधिर की बूँदे धीरे धीरे उसके सारे जीवन को रँग रही थी। उसी लाली मे जहाँगीर गर्क हो गया। किन्तु समय के साथ जब धीरे धीरे यह लाली विलीन होने लगी, तव तो जहाँगीर ने प्याले मे मदिरा ढाली, उस मदिरा की लाली मे उसने सारे जग को देखा, अपने प्याले की उस लाली से उसने सारे जहान को रँग दिया। अपनी इच्छा पूर्ण करने वाले उस प्याले को जी भर कर चूमा, और होते होते उस प्याले के प्रति जहाँगीर के हृदय मे इतना प्रेम उमडा कि वह स्वय एक प्याले मे कूद पडा। प्याला ! वह लाल लाल लबालब भरा प्याला ! आह ! वह कितना प्यारा था !

अपने जीवन-प्रभात मे ही वह अलसाया हुआ, चोट खाकर घायल पडा था। ससार के प्रति उदासीन, आँखे वन्द किए, वह पडा पडा अपने ही स्मृतिलोक मे घूमता था। पुरानी स्मृतियो को याद कर-कर वह झूमता था, रोता था, किन्तु ससार उसके प्रति उदासीन न था, भाग्य से यह देखा न गया कि जहाँगीर यो ही अकर्मण्य पडा विस्मरणीय विगत बातो को याद कर पुराने दिनो के सपने देखे।

राह-राह की भिखारिन ने उस अलसाए हुए जहाँगीर को ठोकर मार कर जगा दिया। वह युवा-सुन्दरी न जाने किन किन अज्ञात देशो मे घूमती-घामती शाहज़ादे की राह में आ पहुँची। सलीम तो उसे देख कर पागल हो गया, उसका छोटा सा हृदय पुन मचल गया। किन्तु भाग्य मे कौन लड सका है ? प्यासे को पानी का प्याला दिखा-दिखा कर उसे तरसाने में ही उस कठोर नियति को आनन्द आता है। जिसे अपनाने के लिए वह उत्सुक हो रहा था, वह पराई हो गई, उसकी देखती आँखो विहार भेज दी गई। उसके चोट खाए हुए हृदय पर पुन आघात लगा, वह विष का घूँट पीकर रह गया।

उस सुन्दर मस्ताने यौवन-प्रभात की एक मनोहारी झलक ने, प्रेमोद्यान की मादक सुगन्धित समीर के एक झोके ने, खिलते हुए प्रेम-पुष्प की एक झाँकी ने, तथा मधुर रागिनी की प्रथम तान ने ही उस मदमाते शाहजादे को मतवाला बना दिया। प्याले पर प्याला ढल रहा था, और उस पर इस मधुर स्मृति का भार तथा भावी आशाओ की उत्सुकता.. .. शाहज़ादा पडा उस दिन की बाट जोहने लगा, जब वह स्वच्छन्द होकर अपनी आकाक्षाओ को पूर्ण कर सकेगा। मानवीय-भावरूपी सागर के वक्षस्थल पर एक बार लहरें उठ चुकी थी, वे कल्लोल कर कठोर भाग्य-रूपी किनारे पर टकरा कर खण्ड खण्ड होकर बिखर चुकी थीं। किन्तु उस कल्लोल की वह सुन्दर ध्वनि अब भी उसके कानो में गूंज रही थी। उस शाहजादे का हृदय-ससार शान्त होकर उस दिन की राह देख रहा था, जब पुन यवनिका उठेगी, जब पुन वे सुन्दर दृश्य देखने को मिलेंगे, और जब एक बार फिर अपने प्रेमी को देखकर उस प्रेमिका के वक्षस्थल में भावो का बवण्डर उठेगा, उसके प्रेम का सागर उमड पडेगा, उसमे तरंगे उठेंगी, और उन तरगों पर नृत्य करेगी वह प्रेम-सुन्दरी। शान्त ससार जब स्तब्ध होकर उस दृश्य को देखेगा, और जब सलीम स्वयं अपनी प्रेयसी को गले से लगाने के लिए दौड़ कर

उस प्रेम-महोदधि मे कूद पडेगा, तथा जब उस तारकमय आकाश के नीचे उस छिटकी हुई चाँदनी मे निर्जन वन भी स्वर्ग से अधिक सुखदायक होगा, सगीत की मधुर तान से भी अधिक आकर्षक होगी वह शान्त निस्तब्धता, जब प्रेमाग्नि मे भी चाँदनी की सी शीतलता आ जावेगी, और जब जलते हुए अगारो से ही हृदय की वह प्यास बुझेगी   किन्तु यह तो सारा एक सुख-स्वप्न था, और इसी स्वप्नलोक मे विचरता था वह शाहजादा ।

× × ×

और बरसो बाद जब पुन उस निराशा के तम मे आशा-ज्योति की प्रथम रेख दिखाई पडी, तब तो शाहजादे को अपनी अनुभूति का ख़याल आया । टूटे हुए दिल को लेकर जहाँगीर ने ससार की रक्षा करने के लिए कमर बाँधी, उसे तो आशा का ही एकमात्र सहारा था ।

और आधे युग के सघर्ष के बाद अपने मृत पति के प्रति कर्तव्य की भावना पर जब नूरजहाँ के प्रेमपिपासु आकाक्षापूर्ण हृदय ने विजय पाई, और जब उस चोट खाए हुए भग्न हृदय वाले जहाँगीर को उसने गले से लगाया, तब तो निराशातम से घिरे हुए उस छिन्न-भिन्न हृदय को कुछ सतोष हुआ, कुछ तृप्ति हुई, किन्तु पहिले की सी मस्ती नही आई । बरसो के मान के बाद नूरजहाँ ने जहाँगीर को इच्छित वर दिया, जहाँगीर तो आनन्द के मारे पागल हो गया । पुन प्रेम-मदिरा का प्याला भरा जाने लगा, किन्तु इस समय जहाँगीर के यौवन-अर्क की तेज़ी घटने लगी थी । गहरी चोटो की कसक अब भी शेष थी । उस तृप्ति मे, उस सुखपूर्ण जीवन मे भी कुछ दर्द का अनुभव होता था । बरसो प्रेमाग्नि मे जल-जल कर उसका हृदय झुलस गया था, वह अधजला दिल अपने फफोलो के दर्द के मारे फडफडाता था । इसी कसक के कारण जहाँगीर जीवन भर तडपता रहा । अपने इस दर्द को भुलाने के लिए, अपनी पुरानी

दु खपूर्ण स्मृतियो को मिटाने के हेतु, तथा यौवन की मस्ती का पुन आह्वान करने को ही जहाँगीर ने मदिरा-देवी की उपासना की।

भग्न हृदयो मे नवीन आशा का सचार हो सकता है, मनुष्य की पुरानी स्मृतियाँ कुछ काल के लिए भुलाई जा सकती है, उसका वह मस्ताना यौवन उसके स्वप्नलोक मे पुन लौट सकता है, किन्तु कहाँ है वह मरहम जिससे वे व्रण, नियति की गहरी चोटो के वे चिह्न, सर्वदा के लिए मिट सकेगे, कहाँ है वह अथाह सागर जिसमे मनुष्य अपने भूतकाल को चिरकाल के लिए डुबो दे, कहाँ है वह जादू भरा पानी जिससे मनुष्य अपने स्मृति-पटल पर अकित स्मृतियो को सर्वदा के लिए धो डाले, तथा कहाँ है वह जादू भरी लकडी जिससे मनुष्य का सुख-स्वप्न एक चिरस्थायी सत्य हो जाय ? संसार को सुखलोक बनाने और अपने स्वप्नो को यथार्थता में परिणत करने का प्रयत्न करना मनुष्य के स्वाभाविक भोलेपन का एक अच्छा उदाहरण है। वह मृगमरीचिका के पीछे दौडता है, किन्तु प्यास बुझना तो दूर रहा, प्यास के मारे ही तडप तडप कर वह मर जाता है।

अपनी प्रेम-मूर्ति नूरजहाँ को पाकर जहाँगीर ने उसके प्रति आत्मसमर्पण किया, उसके चरणो मे सारे साम्राज्य एवं सारी सत्ता को रख दिया। नूरजहाँ ने उन्हें ग्रहण किया। हृदयो पर शासन करते करते अब उसे साम्राज्य पर शासन करने का चस्का लगा। भारत पर अब मानवीय भावो का दौर दौरा हो गया। एक बवण्डर उठा, एक भयकर तूफान आया, सांय-सांय करती हुई आँधी चलने लगी और सर्वत्र प्रलय के चिह्न दिखाई देने लगे। खुसरो, प्यारा खुसरो, न जाने कहाँ चला गया, उस दुर्दिन में उसके गुम हो जाने का पता भी न लगा। खुर्रम को भी कहाँ का कहाँ उडा दिया। शहरयार तो बेचारा बेहोश पडा था। जहाँगीर भी स्वयं आँखें बन्द किए पडा पडा सुरा, सुन्दरी तथा संगीत के स्वप्नलोक में विचर रहा था। किन्तु जब एक झोका आया और जब तूफान का अन्त

उस प्रेम-महोदधि मे कूद पडेगा, तथा जब उस तारकमय आकाश के नीचे उस छिटकी हुई चाँदनी मे निर्जन वन भी स्वर्ग से अधिक सुखदायक होगा, सगीत की मधुर तान से भी अधिक आकर्षक होगी वह शान्त निस्तब्धता, जब प्रेमाग्नि मे भी चाँदनी की सी शीतलता आ जावेगी, और जब जलते हुए अगारो से ही हृदय की वह प्यास बुझेगी किन्तु यह तो सारा एक सुख-स्वप्न था, और इसी स्वप्नलोक मे विचरता था वह शाहजादा ।

× × ×

और बरसो बाद जब पुन उस निराशा के तम मे आशा-ज्योति की प्रथम रेख दिखाई पडी, तब तो शाहजादे को अपनी अनुभूति का खयाल आया । टूटे हुए दिल को लेकर जहाँगीर ने ससार की रक्षा करने के लिए कमर बाँधी, उसे तो आशा का ही एकमात्र सहारा था ।

और आधे युग के सघर्ष के बाद अपने मृत पति के प्रति कर्तव्य की भावना पर जब नूरजहाँ के प्रेमपिपासु आकाक्षापूर्ण हृदय ने विजय पाई, और जब उस चोट खाए हुए भग्न हृदय वाले जहाँगीर को उसने गले से लगाया, तब तो निराशातम से घिरे हुए उस छिन्न-भिन्न हृदय को कुछ सतोष हुआ, कुछ तृप्ति हुई, किन्तु पहिले की सी मस्ती नही आई । बरसो के मान के बाद नूरजहाँ ने जहाँगीर को इच्छित वर दिया, जहाँगीर तो आनन्द के मारे पागल हो गया । पुन प्रेम-मदिरा का प्याला भरा जाने लगा, किन्तु इस समय जहाँगीर के यौवन-अर्क की तेजी घटने लगी थी । गहरी चोटो की कसक अब भी शेप थी । उस तृप्ति मे, उस सुखपूर्ण जीवन मे भी कुछ दर्द का अनुभव होता था । बरसो प्रेमाग्नि मे जल-जल कर उसका हृदय झुलस गया था, वह अधजला दिल अपने फफोलो के दर्द के मारे फडफडाता था । इसी कसक के कारण जहाँगीर जीवन भर तडपता रहा । अपने इस दर्द को भुलाने के लिए, अपनी पुरानी

दुःखपूर्ण स्मृतियो को मिटाने के हेतु, तथा यौवन की मस्ती का पुनः आह्वान करने को ही जहाँगीर ने मदिरा-देवी की उपासना की।

भग्न हृदयो में नवीन आशा का संचार हो सकता है, मनुष्य की पुरानी स्मृतियाँ कुछ काल के लिए भुलाई जा सकती है, उसका वह मस्ताना यौवन उसके स्वप्नलोक में पुनः लौट सकता है, किन्तु कहाँ है वह मरहम जिससे वे व्रण, नियति की गहरी चोटो के वे चिह्न, सर्वदा के लिए मिट सकेंगे; कहाँ है वह अथाह सागर जिसमें मनुष्य अपने भूतकाल को चिरकाल के लिए डुबो दे, कहाँ है वह जादू भरा पानी जिनसे मनुष्य अपने स्मृति-पटल पर अंकित स्मृतियो को सर्वदा के लिए धो डाले; तथा कहाँ है वह जादू भरी लकड़ी जिससे मनुष्य का सुख-स्वप्न एक चिरस्थायी सत्य हो जाय ? ससार को सुखलोक बनाने और अपने स्वप्नो को यथार्थता में परिणत करने का प्रयत्न करना मनुष्य के स्वाभाविक भोलेपन का एक अच्छा उदाहरण है। वह मृगमरीचिका के पीछे दौड़ता है, किन्तु प्यास बुझना तो दूर रहा, प्यास के मारे ही तड़प तड़प कर वह मर जाता है।

अपनी प्रेम-मूर्ति नूरजहाँ को पाकर जहाँगीर ने उनके प्रति आत्मसमर्पण किया, उसके चरणो मे सारे साम्राज्य एव सारी सत्ता को रख दिया। नूरजहाँ ने उन्हें ग्रहण किया। हृदयो पर शासन करते करते अब उसे साम्राज्य पर शासन करने का चस्का लगा। भारत पर अब मानवीय भावो का दौर दौरा हो गया। एक बवण्डर उठा, एक भयकर तूफान आया, साँय-साँय करती हुई आँधी चलने लगी और सर्वत्र प्रलय के चिह्न दिखाई देने लगे। खुसरो, प्यारा खुसरो, न जाने कहाँ चला गया, उन दुर्दिन मे उसके गुम हो जाने का पता भी न लगा। खुर्रम को भी कहाँ का कहाँ उड़ा दिया। शहरयार तो बेचारा बेहोश पड़ा था। जहाँगीर भी स्वय आँखें बन्द किए पड़ा पड़ा सुरा, सुन्दरी तथा सगीत के स्वप्नलोक में विचर रहा था। किन्तु जब एक झोंका आता और जब तूफान का अन्त

होने लगा तब जहाँगीर ने आँखें कुछ खोली, देखा कि उसको लिये नूरजहाँ रावलपिण्डी के पास भागी चली जा रही थी, खुर्रम और महावत खाँ झेलम के इस पार डेरा डाले पडे थे। जहाँगीर ने स्वय को ससार का रक्षक घोषित किया था, किन्तु उसकी भी रक्षा के लिए जहान के नूर की आवश्यकता पडी। नूरजहाँ ने देखा कि यदि वह अपने प्रेमपात्र की रक्षा न करेगी तो उसकी सत्ता, उसका वह गौरव और शासन, सब कुछ नष्ट हो जावेगा। जहाँगीर को अपने हृदय-प्रदेश के अन्तरतम निभृत कक्ष मे छिपाए रखना, तथा उसके हृदय को उसके प्रेम को वहाँ बन्दी रखना भी नूरजहाँ को पर्याप्त प्रतीत न हुआ, उसे अचल मे समेटे हृदय से चिपटाए लिए जाना ही उसे अत्यावश्यक जान पडा।

× × ×

अकबर के शासनकाल में जो मादकता साम्राज्य पर छा रही थी, उसी के फलस्वरूप जहाँगीर के समय मे आई यह अन्धकारपूर्ण आँधी। अन्धकार के उस काले वातावरण मे वासनाओ के उस घनघोर तम से पूर्ण ससार मे प्रेममदिरा तथा प्रेमविद्रोह का साथ ही भीषण प्रवाह आया, भयकर आग लगी। उस दावानल मे सब कुछ स्वाहा हो गया और उनके उन भस्मावशेषो मे से निकला प्रेम-सलिल का पवित्र सोता—ताज। समुद्र-मन्थन के समय कालकूट विष के बाद श्वेत वस्त्र पहिने हाथ मे अमृत का कमण्डल लिए ज्यो धन्वन्तरि निकले, त्यो ही साम्राज्य-स्थापना मे मोह तथा उद्दाम वासनाओ के भीषण अन्धड के बाद निकला वह प्रेमामृत, वह धवल प्रेम-स्मारक, और उसे ससार को प्रदान किया उस श्वेत-वसन वाले वृद्ध शाहजहाँ ने। महादेव की तरह जहाँगीर भी उस कालकूट भीषण दावानल को पी गया, और जीवन-पर्यन्त उसके भयकर प्रभाव से जलता रहा, और जब निकली शुद्ध प्रेम की वह ज्योति तो उसे अपने पुत्र शाहजहाँ तथा ससार के समस्त दर्शको

के लिए छोड दिया। विपयवासना के इस हलाहल को पीकर जहाँगीर सचमुच संसार का रक्षक हुआ।

किन्तु विप तो विप ही था। बरसो अपने टूटे हुए हृदय को सँभालते-सँभालते जहाँगीर बेबस हो गया। उसका हृदय निरतर चोटें खा-खा कर चकनाचूर हो चुका था। वह विप उसकी नस-नस में व्याप्त हो रहा था। अन्दर ही अन्दर आग सुलग रही थी, उसने जहाँगीर को खाक कर डाला। नूरजहाँ ने उसमें अन्तिम आहुति डाली, विपयवासना का वह दावानल पुन भडका, फिर आँधी चलने लगी, महावत खाँ और खुर्रम दक्षिण की ओर भागे। किन्तु उस झुलसे हुए खोखले शरीर में अब क्या शेप था? इस बार जो अग्नि भडकी तो जहाँगीर के इस पार्थिव शरीर को ही जलाने लगी। इस गरमी को न सह कर जहाँगीर शान्ति के लिए इस भौतिक जगत के स्वर्ग की ओर दौडा। चिरकाल से सतप्त करने वाली इस गरमी को दबाने के लिए वह हिमालय से लिपटने को बढा। किन्तु इस बार नियति अधिक अनुकूल थी, एक ही लपट ने उसके नश्वर शरीर को खाक कर डाला।

× × ×

दावानल शान्त हो गया। ईंधन के अभाव से उसका अन्त हो गया। किन्तु जहाँगीर के उन भस्मावशेपो मे से आज भी वह तप्त आह निकलती है कि उसको सहन करना कठिन हो जाता है। शाहजहाँ ने उस भस्म को पत्थरो के इस सुन्दर प्रासाद में रख कर पत्थरो में जड दिया; किन्तु आज भी उस स्थान पर वे तप्त आहे विद्यमान है। दिन प्रति दिन उन पत्थरो पर ताजे-ताजे सुगन्धित पुष्प चढाए जाते है, किन्तु कुछ ही घटो मे वे भी उस गरमी से झुलस कर मुरझा जाते है। इस भौतिक जगत मे विपयवासना की निरन्तर उठने वाली लपटो को कितने सह सके है? कितने मनुष्य टूटे हुए हृदयो से निकली हुई आहो का सामना कर सके है? एक कोमल

कली का निकलना, उसका खिलना और खिलकर उसका फूलना, यत्र-तत्र डुलाया जाना, उन कँटीले काँटो मे विधना, उन काले-कलूटे भ्रमरो द्वारा रौदा जाना, और तव मुरझा जाना, सूख जाना, टूट पडना, और मिट्टी मे मिल कर विनष्ट हो जाना। अनेको कलियाँ खिलती है, कई फूल कुचले जाते है, परन्तु तप्त लपटो को कौन सह सकता है? खिलती हुई गुलाव की कली भले ही उस टूटे हुए हृदय के रक्त को अपनाकर उस रक्तवर्ण से अपने अचल को रँग ले, परन्तु फिर भी उस टूटे हुए हृदय की आह का सामना करना, उस तपतपाती हुई निश्वास को सहना उन कुचले हुए फूलो और तडपती हुई कलियो तक के लिए यह असम्भव है।

आज भी उन पत्थरो पर, जहाँगीर के तडपते हुए हृदय पर रखे गए पत्थरो पर, एक दिया टिमटिमाता है। दीपक की वह लौ झिलमिला कर रह जाती है। उस मिट्टी के दिये मे भरे हुए उस स्नेह को, उस स्नेह से सिक्त उस उज्ज्वल वत्ती को, वासना की वह प्रदीप्त लौ तिल-तिल कर जलाती है। दूर-दूर देशो से अगणित पतगे उस दिये पर खिचे चले आते है, जल कर भस्म हो जाते है, और उनकी भस्म को रमाए वह वत्ती जलती ही जाती है, और मस्तक रूपी उस लौ को धुन-धुन कर वह पतगे के उस जीवन की सराहना करती है जो एकबारगी जल कर भस्म हो जाता है। उस जलते हुए चिराग से अधिक द्योतक और कौन सी वस्तु उस समाधि पर रखी जा सकती है?

× × ×

उन्मत्त आँधी की नाई नूरजहाँ ने भारतीय रगमच पर प्रवेश किया था, किन्तु अव उतरते हुए ज्वार की तरह वह वहाँ से अनजाने लौट गई। जहाँगीर की मृत्यु हुई और उसके साथ ही नूरजहाँ के सार्वजनिक जीवन ने विदा ली, उसकी महती सत्ता भी अनजाने

लुप्त हो गई; रूप-वासना तथा राजमद की वह मादकता कपूर की नाईं उड़ गई।

नूरजहाँ ने देखा कि राष्ट्र-सागर की तरंगें धीरे-धीरे शान्त हो रही थी, भारतीय आकाश साफ हो रहा था। क्रूर काल द्वारा अपनी प्रेम-मूर्ति को अपनी सत्ता के द्योतक को नष्ट होते देख कर भी नूरजहाँ स्तब्ध थी। एक ही हाथ में नियति ने उसका सब कुछ साफ कर डाला। अपना सर्वस्व लुटते देखा, किन्तु उसकी आँखों में आँसू न थे, मुख में आर्तनाद न था। वह खड़ी चुपचाप देख रही थी और उसी के सामने उसका सर्वस्व लुट रहा था, नियति की कठोर थप्पड़ें खाने की उसे लत पड़ गई थी। जन्म से ही उत्थान, पतन तथा भाग्य के उलट-फेरों का सामना करना उसकी प्रकृति का एक अविभाज्य अंग हो गया था।

क्षमता की मदिरा पीकर नूरजहाँ उन्मत्त हो गई थी। उसका नशा अब उतर रहा था, किन्तु खुमारी अब भी शेष थी। पुरानी स्मृतियाँ, पुराने संस्कार, उन शक्तिशाली दिनों की वह सुध भी उसे सताती थी। मन्त्र-मुग्ध की नाईं अपनी पुरानी आदत के ही परिणाम-स्वरूप नूरजहाँ एक बार पुनः उठी और चाहा कि शासन और सत्ता की बागडोर एक बार फिर सँभाले, पुनः शासन के बिखरे बन्धनों को जकड़े तथा अपनी शक्ति को संगृहीत करे, किन्तु कहाँ था उसका वह पुराना उत्साह, उसकी वे पुरानी आकांक्षाएँ? .... उसके जीवन पर निराशा का सम्पूर्ण कुहरा छा रहा था। उसकी आशाओं का पूर्ण अन्त हो चुका था। शाहजहाँ के तीव्र झोंकों को न सह कर नूरजहाँ गिर पड़ी। अर्जुन की ही तरह उसने भी पुराने संस्कारों के आधार पर पुनः उठने का, एक बार फिर अपनी सत्ता प्रदर्शित करने का प्रयास किया, किन्तु उसकी सत्ता का वह स्थायी आधार कहाँ था? उसके जीवनरथ का वह सारथी ही अब नहीं रहा जो उसे सफलता के मार्ग पर ले जा सके।

नूरजहाँ इस लोक मे आई थी या तो शासन करने या विस्मृति के गम्भीर गह्वर मे स्वय को विलुप्त करने। वह ससार के साथ खिलवाड करने आई थी, स्वय ससार के खिलवाड की वस्तु न थी। मानवीय भावो के सागर मे निरन्तर उठने वाली तरगो को रौंद कर उन पर शासन करना, या उन तरगो को चीर कर उस अथाह सागर मे सर्वदा के लिए डूब जाना ही उसका उद्देश्य था। उन निर्वल तरगो द्वारा इधर-उधर पटकी जाना उसे अभीष्ट न था, उसके साथ वे तरगे मनचाहा खिलवाड करे यह एक असम्भव बात थी।

अपने प्रियतम की मृत्यु के बाद ही नूरजहाँ ने अपने सासारिक जीवन से बिदा ले ली। अपने पद से पतित भग्न सुन्दर मूर्ति के समान ही नूरजहाँ भारतीय रगमच पर अस्त-व्यस्त पडी थी, किन्तु नही ससार अधिक काल तक यह दृश्य नही देख सका, उस पर विस्मृति की यवनिका गिर रही थी। ससार ने उसे भुला दिया, नूरजहाँ के अन्तिम दिनो की मनुष्य को कोई भी चिन्ता न रही।

ऊँचाई मे खड्ड मे गिरने वाले जलप्रपात को देखने के लिए सैकड़ो कोसो की दूरी से मनुष्य चले आते है। वहाँ न जाने कहाँ से जल आता है और न जाने कहाँ चला जाता है। उस गिरती हुई धारा में, उस पतनोन्मुख प्रवाह मे कौन सा आकर्पण है ? उन उठे हुए कगारो पर टकरा कर उस जलधारा का छितरा जाना, खण्ड-खण्ड होकर फुहारो के स्वरूप मे यत्र-तत्र विखर जाना, हवा मे मिल जाना—वस, इसी दृश्य को देखने मे मनुष्य को आनन्द आता है। कहाँ से यह जल आता है, प्रपात के समय उसकी क्या दशा होती है, कितनी बेदर्दी के साथ वह धारा छिन्न-भिन्न होती है, और आगे उस कठोर पृथ्वीतल पर गिर कर उस जल की क्या दशा होती है, इसका विवरण कौन पूछता है ? प्रपात तथा उसके फलस्वरूप छितराए हुए उन फुहारो से ही मनुष्य की तृप्ति हो जाती है।

नूरजहाँ ने जीवित मृत्यु का आलिगन किया। उसने हँसी को छोड कर हाहाकार को अपनाया, प्रकाश को त्याग कर अन्धकार की शरण ली, विलास को ठुकरा कर तप करना प्रारम्भ किया, रगबिरगे वस्त्रो को छोड कर श्वेत वसन पहिन लिए। विनाश का, आगामी मृत्यु का वह करुण निनाद सुन कर भी अव नूरजहाँ का दिल नही दहलता था। मृत्यु की उस अज्ञात अस्पष्ट पदध्वनि को सुनने ही में उसे आनन्द आता था। उसने अपनी मृत्यु को अपने सम्मुख नाचते देखा। ध्वस के भयंकर स्वरूप को देख कर भी वह अविचलित रही, और जब अज्ञात लोक से किसी ने उसका मूक आह्वान किया तब भी वह अपनी चिरपरिचित शान्त मन्थर गति मे ही निधडक चली गई। इस लोक को छोड कर उसने दूसरे लोक मे अज्ञात-रूपेण पदार्पण किया। जहान का नूर लुट गया और ससार को पता भी न लगा। आज भी उस श्वेत समाधि के भीतरी भाग मे उसकी कब्र पर पडे मुरझाए हुए सुन्दर फूलो की सुगन्ध नूरजहाँ के अन्तिम दिनो की याद दिलाते है।

× × ×

एक ही नगर मे स्थित है उन तीन भग्न हृदयो की कब्रे, तीन भिन्न-भिन्न स्थानो में रहने वाले दैव-सयोग से एकत्रित हुए थे, किन्तु जिस नियति ने उन्हें इकट्ठा किया था, उसी ने उन्हे अलग अलग कर दिया। एक ही शहर मे तीनो की कब्रें विद्यमान है, किन्तु फिर भी वे दूर दूर पडे है। अपने अपने हृदय का भार उठाए, अपनी अपनी अतृप्त वासनाओ की अग्नि को अपने दिल में छिपाए, अपने अपने भग्न हृदय के टुकडो को समेटे तीनो शताब्दियो से अपने अपने स्थान पर पडे है।

इस लोक में आकर कौन अपनी आकाक्षाओ को पूर्ण कर सका है ? किसने चिर सयोग का सुख पाया है ? कुछ ही घडियो का, कुछ ही दिनो का, कुछ ही वर्षों या युगो का सयोग, और बस

यही ससार की जीवन-कहानी, सुखवार्ता समाप्त हो जाती है। वियोग, वियोग, चिर वियोग और उस पर वहाए गए आँसू, वस ये ही शेप रह जाते है। और तव ! धू-धू कर के भावो का ववण्डर उठता है, हृदय जल उठता है, आँसुओ का प्रवाह उमड पडता है, तपतपाई हुई उसासे निकली पडती है, और अन्त मे रह जाती है स्मृतिरूपी दीपक की वह श्यामल धूम-रेखा, जो जल जल कर तमसावृत-पटल को अधिकाधिक अधकार पूर्ण वनाती है, और वे आँसू, जिन्हे उस निराशामय शान्त निस्तब्ध वातावरण मे कोई अन-जाने टपका देता है।

और उन तीन कब्रो पर आज भी आँसू ढलकते है। रात्रि के समय आज भी जब सर सर करती हुई सिहराने वाली ठडी हवा चलती है, जव उन विगत-राज्यश्री वाली कब्रो पर छोटे छोटे मिट्टी के दिये टिमटिमाते है, और जव उनकी छोटी सी उज्ज्वल लौ झिलमिला कर रह जाती है, तव काली चादर ओढे उस असीम अन्धकार मे से न जाने कौन आता है, रात भर उन कब्रो पर रोता है और अरुणोदय से पहिले ही अपनी चादर समेटे चुपचाप चला जाता है। और प्रभात के समय पूर्व की ओर जव, रात भर रोते रोते लाल हुई एक आँख देख पडती है, तव उन कब्रो पर दिखाई देते है यत्र-तत्र ढलके हुए अश्रुकण। ये ही अश्रुकण आज भी उन तडपते हुए, प्रेम के प्यासे मनुष्यो के धधकते हुए, भग्न हृदयो की अग्नि को शान्त वनाए रखते है।

उजड़ा स्वर्ग

उजड़ा स्वर्ग

[१]

और वे भी दिन थे, जब पत्थरों तक में यौवन फूट निकला था, उनके मदमाते यौवन की रेखाएँ उभरी पड़ती थी, उन्हे भी जब शृंगार की सूझी थी, जब बहुमूल्य रंगबिरंगे सुन्दर रत्न भी उनकी बाँकी अदा पर मुग्ध होकर उन कठोर निर्जीव पत्थरों से चिपटने को दौड़ पड़े, उनका चिर सहवास प्राप्त करने को वे लालायित हो रहे थे, और चाँदी-सोने ने भी जब उनसे लिपट कर गौरव का अनुभव किया था। वे पत्थर अपनी उठती हुई जवानी मे ही मतवाले हो रहे थे, सुन्दरता छलकी पड़ती थी, कोमलता को भी उनमें अपना पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता था, और तब, उन श्वेत पत्थरों में भी वासना और आकांक्षाओं की रंगबिरंगी भावनाएँ झलकती थी। उन यौवनपूर्ण सुन्दर सुडौल पत्थरों के वे आभूषण, वे सुन्दर पुष्प .सच्चे सुकोमल सुगंधित पुष्प भी उनसे चिपट कर भूल गए अपना अस्तित्व, उनके प्रेम में पत्थर हो गए, उन पत्थरों में भी सजीवता का अनुभव कर वे चिरनिद्रित से रह गए। और उन मदमाते पत्थरों ने अपने प्रेमियों को, अपने गले के उन हारों को, अमरत्व प्रदान किया।

ये पत्थर, उन पार्थिव स्वर्गों के पत्थर थे, भारत-सम्राट् ही नहीं किन्तु भारतीय साम्राज्य, समाज तथा भारतीय कला भी जिस स्वर्ग में बेहोश विचरते थे। उन पत्थरों की सजीवता पर, उनकी मस्ती पर, उनके निराभिमान पर, उनकी बाँकी अदा पर, उनके उभरते हुए यौवन के आकर्षण से, संसार मुग्ध था उनके पैरों में लोटता था,

उनको जी भर देख लेने को पागल की नाईं आँख फाड फाड कर देखता था, उनकी मस्ती के सहस्राश को भी पाने के लिए वालक की तरह मचलता था, रोता था, विलखता था परन्तु वे पत्थर पत्थर ही तो थे, फिर उन पर यौवन का उन्माद, अपनी शान मे ही ऐंठे जाते थे वे, अपने मतवालेपन मे ही भूमते थे, अपने अमरत्व का अनुभव कर इतराते थे। गले से लगे हुए अपने प्रेमी पुष्पो की ओर एक नजर डालने को भी जो जरा न भुके, ससार, दु खपूर्ण मृत्युमय ससार की भला वे क्यो परवाह करने लगे ?

पत्थर, पत्थर अरे ! उस भौतिक स्वर्ग के पत्थरो तक मे यौवन छलक रहा था, उन तक मे इतनी मस्ती थी, तव वह स्वर्ग . और उसके वे निवासी, उनको भी मस्त कर देने वाली, उन्मत्त बना देने वाली मदिरा आठो पहर मस्ती मे भूमने वाले स्वर्ग-निवासियो के उन स्वर्गीय शासको को भी मदोन्मत्त कर सकने वाली मदिरा, उसका खयाल मात्र ही मस्त कर देने वाला है, तव उसकी एक घूंट, एक मदभरा प्याला, ।

प्याला, प्याला, वह मदभरा प्याला, उस स्वर्ग मे छलक रहा था, उसकी लाली मे पत्थर तक सिर से पाँव तक रँग रहे थे, ससार खडा देखता था, तरसता था , परन्तु एक दिन उस स्वर्ग का निर्माता तक इसी मस्ती की ओर प्यासी दृष्टि से देखता था, उसका आह्वान करने को आँखें विछा रहा था, स्वर्गीय उन्माद की उस मदमाती मदिरा की थोडी सी भी उन उन्मत्तकारी बूंदो को वटोरने के लिए नयनो के दो दो प्याले सरका कर एकटक ताकता था। तव जहान का शाह मादकता की भीख माँगने निकला था। उसके प्रेम पर पत्थर पड चुके थे, उसका दिल मिट्टी मे मिल चुका था, उसकी प्रियतमा का वह अस्थिपजर सुन्दर अद्वितीय ताज पहने वीभत्स अट्टहास करता था। प्रेम-मदिरा ढुलक चुकी थी और शाह-जहाँ रिक्त नेत्रो से ससार को देख रहा था। प्रेम-प्रतिमा भग्न हो

गई थी, हृदयासन खाली पडा था, और पावो तले भारतीय साम्राज्य फैला हुआ था, कोहनूर-जटित ताज पैरो मे पड़ा सिर पर रखे जाने की बाट देख रहा था, राज्यश्री उसके सम्मुख नृत्य कर रही थी, अपनी भावभगि द्वारा उसे ही नही ससार को भी लुभाने का भरसक प्रयत्न कर रही थी, तथा उनके हृदयो को अपने अचल मे समेटने के लिए अनन्त सौन्दर्य बिखेर रही थी।

मदिरा! मदिरा! वह मस्ती! मादकता का वह नर्तन!

. एक बार मुंह से लगी नही छूटती। एक बार स्वप्न देखने की, सुख-स्वप्न-लोक मे विचरने की लत पडने पर उसके बिना जीवन नीरस हो जाता है। प्रेम-मदिरा को मिट्टी मे मिला कर शाहजहाँ पुन मस्ती लाने को लालायित हो रहा था, अपने जीवन-सर्वस्व को खोकर जीवन का कोई दूसरा आसरा ढूंढ रहा था। सुन्दर सुकोमल अनारकली को कुचल देने वाली कठोर-हृदया राज्यश्री शाहजहाँ की सहायक हुई। शाहजहाँ की प्यासी चितवन को बुझाने के लिए राज्यश्री ने राजमदिरा ढाली। दो-दो प्यालो में एकबारगी सुख-स्वप्न-लोक की उस मस्ती को पाकर शाहजहाँ बेहोश हो गया। राज्यश्री ने सम्राट् को प्रेमलोक से भुलावा देकर ससार के स्वर्ग की ओर आकृष्ट किया, और शाहजहाँ मन्त्र-मुग्ध की तरह उस स्वर्ग की ओर बढा। वह प्रेमी अपनी प्रेमिका को गँवा कर स्वय को खो चुका था, अब इस स्वर्ग मे पहुँच कर वह अपने उस प्रेमलोक को भी खो बैठा।

इस पृथ्वी-लोक मे स्वर्ग, इस जमीन पर बहिश्त . इस भावी जीवन मे स्वर्ग पाने की आशा ही अनेकानेक व्यक्तियो को पागल कर देती है. तब इस जगत में, भौतिक ससार मे, स्वर्ग को पाकर, उसे प्रत्यक्ष देख कर उसमें विचरना. । स्वर्ग के स्वप्न देख कर ही कौन भौतिक जीवन को नही भूला है तब भौतिक स्वर्ग का निर्माण, उसके वे सारे सुख, उस जीवन की वह मस्ती . .मरे, इस स्वर्ग

मे पहुँच कर अपना अस्तित्व भुला देना, अपना व्यक्तित्व खो बैठना कोई अनहोनी बात नही है। और इन सब से अधिक नवीन प्रेयसी का प्रेम, प्रौढत्व मे पुन प्रेम का उद्भव, उसका प्रस्फुटन और विकास एक ही बात मनुष्य को उन्मत्त बना देने के लिए पर्याप्त होती है, तब इतनो का सम्मिश्रण वहुत थी वह मस्ती ।

× × ×

मुगल साम्राज्य ने भी प्रौढत्व को प्राप्त कर अँगडाई ली। अपने रक्षक का तिरस्कार कर जहान ने अपने शाह को अपनाया, उसको पूजा, उसके चरणो मे प्रेमाञ्जलि अर्पण की और उस शाह ने अपने जहान की ओर दृष्टि डाली। उसके उस साम्राज्य के यौवन का उन्माद भी अब कुछ घटने लगा था, नूरजहाँ भारतीय रगमच से विदा ले चुकी थी। अपनी अन्तिम प्रेयसी मुमताज को खोकर साम्राज्य ने उसकी आखरी अदा ताज की अमर सुन्दरता मे देखी, परन्तु अब भी नित-नई की चाह घटी न थी। वढते हुए साम्राज्य को प्रौढत्व मे भी नवीन प्रेयसी की इच्छा हुई, आगरा की सकुचित गलियाँ साम्राज्य के धुकधुकाते हुए जीवनपूर्ण हृदय को समाविष्ट करने के लिए पर्याप्त प्रतीत न हुई। साम्राज्य का प्रेमसागर शान्त हो गया था, किन्तु अब भी अथाह महोदधि उस वक्ष स्थल में हिलोरें ले रहा था। प्रशान्त महासागर मे तरङ्गे यदा-कदा ही उठती है, परन्तु उस चाँद से मुखडे को देख कर वह भी खिच जाता है, अनजाने उमड पडता है, उस चाँद का वह आकर्षण वह साधारण सागर भी उसके प्रभाव से नही बच सकता है, तव उस प्रेमसागर का न खिचना ससार मे विरले ही उस आकर्पण का सफलतापूर्वक सामना कर सके है।

साम्राज्य नवीन प्रेयसी के लिए लालायित हो उठा। सम्राट् विधुर हो ही गया था, साम्राज्य ने अपनी प्रथम प्रेयसी आगरा नगरी को अपने हृदय से निकाल बाहर किया, और उन दोनो को रिझाने

के लिए राज्यश्री ने नववधू की योजना की। अनन्तयौवना ने बहु-भर्तृका को चुना। इस पाचाली ने भी सम्राट् और साम्राज्य दोनों को साथ ही पति के स्वरूप मे स्वीकार किया। और. .इन पाचाली के लिए भी उसी कुरुक्षेत्र मे पुन महाभारत हुआ, इनके पति को भी बारह वर्ष का वनवास हुआ, उसे देश-देश घूमना पडा, और इनके पुत्र. नहीं! नहीं! यह पहिले भी नहीं हुआ, आगे भी न होगा, पाचाली के भाग्य मे पुत्र-पौत्र का सुख न लिखा था, न लिखा है।

न जाने कितने साम्राज्यो की प्रेयसी, उजाड़ विधवा नगरी पुन सधवा हुई। अपनी माँग में फिर सिन्दूर भरने के लिए इसने राज्यश्री से सौदा किया, अपने प्रेमी के स्थायित्व को देकर उसने अनन्त यौवन प्राप्त किया। और तब नवीन आशाओं के उस सुन-हले वातावरण मे दिल्ली का चिर यौवन प्रस्फुटित हुआ। दिल्ली ने पुन रग बदला, नया चोला धारण किया, वैधव्य के उन फटे चिथडो को दूर फेंक कर उसने उन्मत्त कर देने वाली लाली में स्वय को रँगा और नव-वधू का सा नया शृगार किया। और तब . .अपने वक्ष-स्थल मे अपने नये प्रेमी को स्थान देने के लिए उसने एक नवीन हृदय की रचना की। उस महान प्रेमी के लिए, अपने नवीन प्रीतम के हेतु दिल्ली ने इस भूलोक पर स्वर्ग को अवतरित किया। भारत सम्राट् के लिए, दिल्लीश्वर के सुखार्थ इस ससार में स्वर्ग भी आ पहुँचा। उस वारागना दिल्ली ने इस भौतिक लोक में स्वर्ग निर्माण किया और इस बार उस सामान्या ने जहान के शाह को इस स्वर्ग-रूपी हृदय का अधिष्ठाता बनाया। यों जगदीश्वर के समान ही दिल्लीश्वर ने भी स्वर्ग में निवास किया, तथा उस भौतिक सुन्दरी दिल्ली ने स्वर्गीय इन्द्राणी से भी बाजी मार ली।

× × ×

नव-वधू ने अपने प्रियतम का स्वागत किया। इस बार ने

आते हुए शाहजहाँ ने यमुना मे उस नये स्वर्ग का प्रतिविम्ब देखा——वह लाल दीवार और उस पर वे श्वेत स्फटिक महल, उस लाल लाल सेज पर लेटी हुई वह श्वेतागी—अपने प्रियतम को आते देख सकुचा गई, नव-वधू के उजले मुख पर लाली दौड गई और उसने लज्जावश अपना मुख अपने अचल मे छिपा लिया, दोनो हाथो से उसे ढक दिया।

और यमुना के प्रवाह मे वायु के किंचिन्मात्र झोके से ही उद्वेलित हो जाने वाली उस धारा पर, निरन्तर उठने वाली उन तरगो पर, शाहजहाँ ने देखा कि वे स्वर्गीय अप्सराएँ, उस दूसरे लोक की वे सुन्दरियाँ, अपनी अद्भुत छटा को रगबिरगे वस्त्रो मे समेटे, उन झीने वस्त्रो में से देख पडने वाले उन श्वेतागो की उस अद्भुत कान्ति से सुशोभित, अपने उजले उजले पैरो पर महावर लगाए, उसके स्वागत के उपलक्ष मे नृत्य कर रही है। भूलोक पर अवतरित स्वर्ग के अधिपति के आने के समय उस दिन उस महानदी पर अपने सौन्दर्य, द्युति तथा अपनी कला का प्रदर्शन करके, जहान के शाह का उस स्वर्ग-लोक मे, नवीन प्रेयसी के उस स्वर्गीय हृदय-मन्दिर मे, स्वागत करने आई है। और उस महानदी का वह कृष्णवर्ण जल उनकी कान्ति से उज्ज्वलित होकर, उनके तलुओ मे लगी महावर की लाली को प्रतिबिम्बित करके हर्ष के मारे कल्लोल कर रहा था। एकवारगी यमुना त्रिकाल-सम्वन्धी दृश्यो की त्रिवेणी बन गई, उत्थान की लाली, प्रताप का उजेला तथा अवसान की कालिमा, तीनो का सम्मिलित प्रतिविम्ब उस महानदी मे देख पडता था। परन्तु अवसान की वह कालिमा तब कहाँ गई? लाली और उज्ज्वल प्रकाश ने उसे छिपा दिया, किसी को तब ख़याल भी न आया कि विगत रात्रि की क्षीण होने वाली कालिमा आगामी रात्रि के स्वरूप मे पुन उपस्थित होकर एकछत्र शासन करती है, और तब वह जीवन-प्रवाह उस स्वर्ग से वहुत दूर जा पहुँचेगा, अपनी दूसरी ही धारा में वहेगा।

स्वर्ग के सुख को देख कर उस समय उसके इस दुखद अन्त का ख़याल किसी को क्यो होता ? अनन्तयौवना विषकन्या भी होती है, चाँद का जो कलक एक समय उसका आभूपण बना रहता है वही कलक बढते बढते पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्र को अमावस्या की कालिमा में रँग देता है । प्रेमप्रणय की उस मस्ती के उमडते हुए प्रवाह में ये सब ख़याल डूब गए । वह उल्लास का दिन था, प्रथम मिलन की रात्रि थी, सुख छलका पडता था, सौन्दर्य उल्लास के प्रवाह मे घुल-घुल कर अधिकाधिक निखरता जाता था । मदिरा-सागर में ज्वार आया था, उस दिन तो उसकी वे लाल लाल उमडती हुई तरगें और उन पर चमकते हुए वे श्वेत फेन उन्होंने सारे स्वर्ग को रँग दिया, और मादकता के सागर की वह तलछट, वह कृष्णवर्णा यमुना, वह तो उस स्वर्ग के तले ही पडी रही, और उस तलछट मे भी लाली की झलक देख पडती थी, आभा की द्युति उसमें भी विद्यमान थी ।

प्रथम-मिलन का उत्सव था, अनन्तयौवना की लाडली की सोहागरात थी । जहान का शाह उसके हृदय में वास करने आया था, और अपने प्यारे का स्वागत करने में पांचाली का हृदय, वह स्वर्ग, फूला समाता न था । उस स्वर्ग का अन्तरग, उसकी सुन्दरता का वर्णन करना असम्भव है । अनन्तयौवना की लाडली, सिद्धहस्त वारांगना का शृगार उसमे सुन्दरता थी, मादकता थी, आकर्पण था, परन्तु उमडते हुए नवयौवन का उभार उसमें न था, निरन्तर अधिकाधिक ऊँची उठने वाली तरगो की तरह वह वक्ष स्थल उठा हुआ न था । वह प्रौढ प्रेमियों का प्रणय था । सौन्दर्य तथा मादकता का इतना गहरा रग चढा था कि उसमे कोई दूसरी विभिन्नता नहीं देख पड़ती थी । स्वर्ग में और उतार-चढाव . जहाँ समानता हो वहीं निरन्तर सुख, निरन्तरवर्ती आनन्द, अखण्ड विराम घर कर लेते हैं । स्थिरता, समानता और प्रशान्त गम्भीरता ही स्वर्ग की विशेषताएँ होती है । स्वर्ग का सुख और

व्यक्तियो के भावो की तरह समान, प्रशान्त महासागर के वक्ष स्थल का सा समतल, और उसी के समान गम्भीर और अगाध भी होता है। यदा-कदा उठने वाली छोटी छोटी तरगे ही उसके वक्ष स्थल पर यत्किंचित् उभार पैदा करती है, उन्ही से उसमे सौन्दर्य आता है, और उन्ही नन्ही तरगो पर नृत्य करती है वह यौवन-सुन्दरी। यौवन-मदिरा से रँगे हुए उस प्रेम-महोदधि मे उठी हुई, घनीभूत भावो की लाल लाल तरगो पर ही स्थिर है वे श्वेत प्रासाद, स्वर्ग-लोक के वे सुन्दर भवन, स्वप्न-ससार की वे स्फटिक वस्तुएँ, भाव-लोक की घनीभूत भावनाओ के वे भौतिक स्वरूप।

वासना के प्रवाह से ही उडती है वे छोटी छोटी आनन्दप्रदायक शुद्ध बूंदें, उस कालकूट विप मे से निकलने वाले रसामृत की वे रसभरी बूंदे, जो अपनी सुन्दरता तथा माधुर्य से उस प्रवाह की कलुपितता को धो देती है, उसकी कालिमा को भी अधिकाधिक सौन्दर्य प्रदान करती है, और अपने माधुर्य से उस मदमाती लाल लाल मदिरा तक में मधुरता भर देती है। अवश्यम्भावी अन्त मे पाई जाने वाली अमरत्व की भावना ही मनुष्य के जीवन को सौन्दर्य तथा माधुर्य से पूर्ण बनाती है। यह भौतिक स्वर्ग या उस पार का वह बहिश्त, एक ही भावना, एक ही विचार-प्रवाह, चिर सुख की इच्छा ही उनमे पाई जाती है। और सुख, सुख मनुष्य उसके लिए कहाँ कहाँ नही भटकता है, क्या क्या नही खोजता है, कौन कौन सी कठिनाइयाँ नही झेलता है, क्या उठा रखता है ? और स्वर्ग-सुख, सुख-इच्छा का भावनापूर्ण पुज, वह तो मनुष्य की कठिनाइयो को, सुख तक पहुँचने के लिए उठाए गए कष्टो को देख कर हँस देता है, और मनुष्य उसी कुटिल हँसी से ही मुग्ध होकर स्वर्ग-प्राप्ति का अनुभव करता है।

स्वर्ग का वह ईपत् हास्य, उसकी वह रहस्यमयी मुसकान उफ! उसने एक स्वरूप धारण करने मे, एक सुचारु दृश्य दिखाने

के लिए कितनो का सहार किया ? इस भौतिक जगत का वह स्वर्ग! वहाँ जहान का नूर बिखरा पड़ा था, स्वर्ण रत्नो से भूषित ताज मिट्टी मे पडी हुई मुमताज के अस्थिपजर को प्रकाशपूर्ण बना रहा था, सहस्रो सीपियो के दिलो को चीर कर निकाले गए मोती यत्र-तत्र चमक रहे थे, उस दूसरे लोक की सुन्दरियाँ इस लोक को आलोकित करने को दौड पडी थी, हज़ारो पुष्पो का दिल निचोड कर उसमे सुगन्धि बिखेरी गई थी, सहस्रो स्नेहपूर्ण वत्तियाँ जल-जल कर उस स्वर्ग को उज्ज्वलित कर रही थी, वहाँ जहान का शाह बेहोश मदमस्त पडा लोटता था, सुखनीद सोता था, स्वप्न देखते देखते अनजाने कहने लगता था—"पृथ्वी पर यदि स्वर्ग है तो यही है, यही है, यही है"।

× × ×

[२]

और उस स्वर्ग मे जाने को राह थी, उसके भी दरवाजे थे और उस राह को सुमधुर ध्वनिपूर्ण चिर सगीत द्वारा गूंजित करके, न जाने कितनो को वह स्वर्ग अनजाने अपने अन्तरिक्ष में भटका कर ले जाता था। उस स्वर्ग की वह राह! विलासिता बिखरी थी उस राह मे, मादकता की लाली वहाँ सर्वत्र फैली हुई थी, और चिर सगीत दुख की भावना तक को धक्के देता था। दुख, दुख ..उसे तो यौवन के डंके की चोट मुर्दे की आह की ध्वनि ही निकाल बाहर करने को पर्याप्त थी। कौन सी वे चाँदनियाँ —अपना दिल तोड तोड कर, अपने वक्षस्थल को छिदवा कर भी सुख का अनुभव करती थी। उस मदमस्त मतवाले के स्वर्ग का चुम्बन करने को लालायित चाँद के उन टुकड़ों की आहो में भी सुमधुर सुर-सगीत ही निकलता था। मुर्दे भी उस स्वर्ग में पहुँच कर भूल गए अपनी मृत्यु-पीडा, उल्लास के मारे कूद कर खड़े हो गए,

और उनके भी रोम रोम से एक ही आवाज आती थी—"यही है ! यही है ! यही है !"

यमुना ने अपना दिल चीर कर इस स्वर्ग को सीचा, उस कृष्ण-वर्णा ने अपने हार्दिक भावो तथा शुद्ध प्रेम का मीठा चमचमाता जीवन उस स्वर्ग मे बहाया। उस भौतिक स्वर्ग की वह आकाश-गगा, उस स्वर्ग को सीच कर उसे भी गौरव का अनुभव हुआ। उसका असीम प्रवाह उसका नित-नया जीवन उस स्वर्ग मे सीमित होकर वहा, उस स्वर्ग के देवी-देवताओ के चरण छूकर वह भी पुराना हो जाता था। स्वर्ग मे एक वार वीता हुआ जीवन क्योकर लौट सकता था, . स्वर्ग में पुरातनता नही, नही, स्वर्ग मे होती हुई वह गगा पुन लौटती थी इस भूतल पर और उस पवित्र पार्थिव गगा को, दूसरे स्वर्ग से उतरी हुई उस भागीरथी को, इस भौतिक स्वर्ग का हाल सुनाने के लिए अत्यधिक वेग के साथ दौड पडती थी।

उस स्वर्गगगा मे, उस नहर-इ-वहिश्त में, खेल करती थी उस स्वर्ग-लोक की अत्यनुपम सुन्दरियाँ। उन श्वेत पत्थरो पर अपनी सुगन्धि फैलाता हुआ वह जल अठखेलियाँ करता, कलकल ध्वनि मे चिर सगीत सुनाता चला जाता था, और वे अप्सराएँ अपने श्वेतागो पर रगविरगे वस्त्र लपेटे, नूपुर पहने, अपने ही ध्यान मे मस्त भुन-भुन की आवाज करती हुई, जल-क्रीडा करती थी। और जव वह हम्माम बसता था, स्वर्ग-निवासी जब उस स्वर्गगगा मे नहाने के लिए आते थे, और अनेकानेक प्रकार के स्नेह से पूर्ण चिराग उस हम्माम को उज्ज्वलित करते थे, रगविरगे सुगन्धित जलो के फव्वारे जव छूटते थे, और उस मस्ताने सुगन्धिपूर्ण वातावरण मे सुमधुर सगीत की ताल पर जव उस हम्माम मे जल-क्रीडा होती थी, तव वहाँ उस स्वर्ग में सौन्दर्य विखरा पडता था, सुख छलकता था, उल्लास की वाढ आ जाती थी, मस्ती का एकछत्र शासन होता था और मादकता का उलग नर्तन , नही, नही, स्वर्ग के उस अद्भुत

दृश्य का वर्णन करना, इस पार्थिव लोक के निवासियों को उस स्वर्गीय छटा की एक झलक भी दिखाना एक असम्भव बात है। स्वर्ग की वह मस्ती . उस हम्माम में, स्वर्ग के उस मादकतापूर्ण जीवन में, गोता लगा कर कौन मस्त नहीं हुआ ? उन श्वेत पत्थरों पर, उन सजीव मदमाते रंगबिरंगे फूलों से सुशोभित स्फटिक पत्थरों पर वह जल-क्रीडा, उन ठण्डे पत्थरों पर वह तपनपाया हुआ जीवन, उस सुगन्धित जीवन के वे रंगबिरंगे फव्वारे और उनको प्रकाशित करने वाले वे अनेकानेक स्वरूप वाले स्नेह-पात्र, उनमें सहर्ष सोल्लास जलती हुई वे सुकोमल श्वेत वत्तियाँ, उन दियों में दहकता हुआ वह स्नेह और उस हम्माम में स्वर्गीय मानवों की वह मस्ती ! उफ, पत्थरों तक पर मस्ती छा जाती थी, वे भी मत्त, उत्तप्त हो जाते थे और उन पत्थरों तक से सुगन्धित जल के फव्वारे छूटने लगते थे, निर्जीव पत्थर भी सजीव होकर स्वर्ग के देवताओं के साथ होली खेलने का साहस कर बैठते थे। और जब वहाँ मदिरा ढलती थी, . सुरा, सुन्दरी और संगीत के साथ ही साथ जब सौरभ, सौन्दर्य और स्वर्गीय सुख भी बिखर बिखर कर बटने जाते थे . .तब वृद्धों तक का गया बीता यौवन भुलावे में पड़कर लौट पड़ता था, असमर्थों की असमर्थता भी उन्हें छोड़ कर चल देती थी, और दुखियों का दुःख भी उसी जल में बह जाता था।. .उफ ! बहुत दूर था उस स्वर्ग का वह उन्मादक दृश्य . .जिसके पर ज्वाला गति से सब दूर पहुँच जाते हैं, वह सूरज भी वहाँ के दृश्य देखने को तरसता था, और अनेकों बार प्रयत्न करने पर बरसों की तपस्या के बाद ही कहीं उसकी कोई एकाध किरण उन बड़े बड़े रंगबिरंगे पर्दों में होती हुई वहाँ तक पहुँच पाती थी। परन्तु . .वहाँ पहुँच कर कौन लौट सका है ? स्वर्ग नरक हो जाए. .परन्तु स्वर्ग के वे निवासी, उसमें जा पहुँचने वाले व्यक्ति . उस ओर से उसे दूर करने वाले वे रहस्यमय अवगाहनपूर्ण पट.. मानव की निगाहों तक

का लौटना, दिये को देख कर पतगो का न मचलना ये सब असम्भव वाते थी ।

स्वर्ग ! स्वर्ग ! हाँ स्वर्ग ही तो था, पशु-पक्षी भी अनजाने जो वहाँ पहुँच गए तो वे भी मस्ती मे वुत हो गए और स्वर्ग मे ही रम गए, वहाँ से लौट न सके । मयूर ! वे ही सुन्दर मयूर जो अपनी सुन्दरता का भार समेटे पीठ पर लादे फिरते है, काली घटा को देख कर उल्लास के मारे चीखते है, मचल पडते है, उन हरे हरे मैदानो पर स्वच्छन्द विचरते है, वहाँ मस्त होकर नाचते है, हाँ ! वे ही मयूर उस स्वर्ग मे जाकर भारतीय सम्राट् के सिंहासन का भार उठाने को तैयार हो गए और वह भी वरसो तक, शताब्दियो तक । जहान के शाह को उन्होने उठाया, आलमगीर के भार को उन्होने सहा और जडवत् खडे रहे ! स्वर्ग के अनन्त सगीत ने उन्हे स्वर्ग के अधिष्ठाता की निरन्तर चर्या करने का पाठ पढाया । परन्तु उस सुन्दर लोक में मस्ती के साथ ही साथ सगीत भी सुन कर उस काली घटा को देखने के लिए वे तरसने लगे, लाली देखते देखते हरियाली के लिए वे लालायित हो गए । और जब भारत के कलेजे पर साँप लोट गया और उसके वक्ष स्थल को रौद कर चल दिया, तव तो मयूर उस साँप को पकडने के लिए दौड पडे, वरसो स्वर्ग मे रह कर वे भूल गए कि वे कोई सिंहासन उठाए है आक्रमणकारी के पीछे पीछे तख्तताऊम उडा चला गया ।

परन्तु उस हरियाली के लिए, पानी की उस वूंदा-वूंदी के लिए, पशु-पक्षी ही नही स्वर्ग के निवासी, उस लोक के देवता भी तरसते थे । सावन के अन्धे वनने को वे ललचते थे, वरसात की उस मदमस्त मादक ठण्डी ठण्डी सुगधित हवा के साथ ही वूंदा-वूंदी मे वैठ रहने को, अपनी उस मस्ती मे प्रकृति-रूपी अपने प्रेयसी की उस हलकी थपकी की मार खाने के इच्छुक थे । राजमद की गरमी को शान्त कर देने वाली तथा साथ ही अधिकाधिक उन्मत्त वना देने वाली उस

[३]

परन्तु स्वर्ग ! स्वर्ग का सुख ! दु ख के बिना सुख नही हो सकती इसकी पूर्ण अनुभूति ! इस लोक मे, पृथ्वी पर भी स्वर्ग से दूर नरक की भी सृष्टि हुई और तभी स्वर्ग का महत्त्व बढा। नरक-निवासियो का करुण क्रन्दन सुन कर ही स्वर्गवासी अपने स्वर्गीय चिर सगीत की मधुरता को समझ सके। दु ख के बिना सुख, समस्त व्यक्तियो की अनुभूति मे समानता, नही ! नही ! तब तो स्वर्ग नरक से भी अधिक दु खपूर्ण हो जायगा। मानवीय आकाक्षाओ की पूर्ति महत्ता के बिना नही हो सकती। तद्देशीय व्यक्तियो मे समानता होने पर भी स्वर्ग का महत्त्व तभी हो सकता है, जब उसके साथ ही नरक भी हो। स्वर्ग के निवासी उसको देखे तथा स्वर्ग की ओर नरकवासियो द्वारा डाली जाने वाली तरस-भरी दृष्टि की प्यास को समझ सके।

उस दूसरी दुनियाँ के समान ही इस लोक मे भी स्वर्ग के साथ ही नरक की भी—नही, नही, स्वर्ग से भी पहिले नरक की सृष्टि हुई थी। स्वर्ग को न अपना सकने वालो के, या स्वर्ग से निर्वासित ही नही इस भौतिक लोक मे भी स्थान न पा सकने वाले व्यक्तियो के भाग्य में नरक-वास ही लिखा था। अपनी आशाओ, अपने दिल के अरमानो

नही, नही, भारत के भाग्य तथा उसके अनिश्चित भविष्य को भी अपने साथ लपेटे, हृदय मे छिपाए, जहान के शाह का प्यारा, दारा तरस तरस कर मर रहा था और ससार ने उसे डबडबाई आँखो से देखा। ससार भर के आँसू भी दारा की भाग्यरेखा को मेट न सके। वह सुर्खरू होकर अपने वृद्ध विवश पिता के सम्मुख आया, और एक बार फिर ससार ने शाहजहाँ की बेबसी देखी, उस बार वह भाग्य के दरवाजे पर सिर फोड कर रह गया, इस बार स्वर्ग के दरवाजे पर रो रो कर भी उस स्वर्ग के अधिष्ठाता तक न पहुँच सका।

परन्तु रक्त की लाली को स्वर्ग की लाली न सह सकी, और दारा का कटा हुआ सिर नरक मे भेज दिया गया। उस स्वर्ग का वह नरक, पतित आत्माओ का वह निवास, विफल व्यक्तियो का वह अन्तिम एकमात्र आश्रय, स्वर्ग से कोसो दूर, उस पुश्चली दिल्ली मे भी अपना दामन बचाए, उन बेचारो को अपने अचल में समेट रहा था।

भारत के प्रारम्भिक मुग़ल सम्राट् हुमायूं की वह कब्र, उनका वह विशाल मकबरा, अन्तिम मुगलो का वह निवासस्थान ही उस स्वर्ग का नरक था। उसकी निर्माता थी, उसी अभागे सम्राट् की विधवा विरही प्रेयसी। उस शासक ने जब जब मस्ती और सफलता की जादू भरी प्याली को मुंह से लगाया, जब जब उसने मादकता का आह्वान किया, तब तब वह एकाएक अदृश्य हो गई, . . . और वह सम्राट् . हक्काबक्का सा होकर इधर-उधर ताकता ही रह गया; और उसे जब कुछ होश हुआ तो देखा कि वह विफलता तथा विपत्तियो का हलाहल पी रहा था। जीवन भर दुर्भाग्य का मारा वह ठोकरे खाता फिरा, और एक दिन ठोकर खाकर जब वह दूसरे लोक मे लुढक पडा, तब तो उसका मकबरा मुग़लो के दुर्भाग्य का आगार बन गया, उनके लिए साक्षात् नरक हो गया।

वह विधवा थी, और उसने अपने दिल के दर्द को उँडेल दिया, उस मकबरे के स्वरूप मे उसने अपने दर्द और दुःख को ही नहीं किन्तु अपने प्रियतम के दुर्भाग्य को भी घनीभूत कर दिया। वहां श्वेत संगमरमर के टुकडे कहीं कहीं आशावाद तथा सुखमयी भावना प्रदर्शित करते है, किन्तु फिर भी वह मकबरा उन टूटे हुए दिलो के रुधिर से सने हुए टुकडो का एक समूह मात्र है। रुधिर के आँसुओं से उस विधवा ने उस मकबरे का अभिसिंचन किया था, और आज भी उस मकबरे में सुन पडती है उस अभागे सम्राट् के टूटे दिल की व्यथा, उसकी दर्द भरी कराह।

और दुखी तो देख कर सब सम्भु की प्रार्थना ही हो जाते है।

आज भी उन हृदय-विहीन मृत-ककालो की निश्वासे उनकी कब्रो पर छाई हुई रहती है, और उन कब्रो पर यत्र-तत्र उगी हुई घास उन भग्न हृदयो के घावो को हरा रखती है। अपने घावो को यो बता बता कर वे ककाल ससार को चेतावनी देते है, उन्हें खोल खोल कर वे दिखाते है कि इस जीवन मे सुख नाम की कोई वस्तु है ही नही। ससार को जरा सी वात मे घवराहट होने लगती है, और जिसे ससार दु ख कहता है, जिसके ख़याल मात्र से वह रो पडता है, वह भी तो खिलवाड ही है। जो दु ख कही सचमुच आ पहुँचता है तो वह मृत्यु के बाद भी साथ नही छोडता। इन ककालो के दु ख से ही विश्व-वेदना का उद्भव होता है, और उन्ही के निश्वासो से ससार की दु खमयी भावना उद्भूत होती है।

× × ×

[४]

परन्तु वेदिल वाले, दिल से हाथ धोकर भी ससार मे विचरने वाले, कितने है? दिल वाले, टूटे दिल वाले, उसकी याद कर कर के रोने वाले, दिल का सौदा करने वाले , उनकी गणना दिल तक कौन पहुँच पाया है जो उनकी सख्या निर्धारित कर सके। और उस स्वर्ग मे, दिल का ही तो वहाँ एकछत्र शासन था। अनन्त यौवन, चिर सुख तथा मस्ती इन सब का निर्माण करके इन्ही के आधार पर दिल ने उस स्वर्ग की नीव डाली थी। परन्तु साथ ही असन्तोप तथा दु ख का निर्माण भी तो दिल के ही हाथो हुआ था। स्वर्ग और उसके साथ नरक का सहवास! विप किसके लिए घातक नही होता, छूत किसे नही लगती? . दिलवालो के स्वर्ग में नरक का विप फैला। अनन्तयौवना विपकन्या भी होती है। उसका सहवास करके कौन चिरजीवी हुआ है? सुख को दु ख के भूत ने सताया। मस्ती और उन्माद को क्षयरूपी राजरोग लगा।

स्वर्ग और उसमे विष, रोग तथा भूतों का प्रवेश ! वह स्वर्ग था, किन्तु था इसी भौतिक लोक का स्वर्ग। जहाँ गुण तक क्षय हो जाते है वहाँ सुख का अक्षय रहना, पुण्य तक जहाँ क्षीण हो जाते है, वहाँ मादकता का अक्षुण्ण बने रहना असम्भव है। अनन्तयौवना ने अभिसिंचन किया था, परन्तु वारागना को अपनाकर कौन सुखी हुआ है ? वह अक्षय सुख,.. वह तो स्वर्ग मे, दूसरे लोक के उस सच्चे स्वर्ग मे भी तो प्राप्त नहीं होता, पुण्य तो वहाँ भी क्षय होते है, पाप वहाँ भी साथ नही छोडते और पुनर्जन्म का भूत वहाँ भी जा पहुँचता है, पुण्यात्माओं तक को वह सताता है, तब इस लोक के स्वर्ग मे उनका अभाव . यह अनहोनी बात कैसे सम्भव हो सकती थी।

चिरयौवना वारागना का सहवास, उसे छोड कर मुगल साम्राज्य का वह सन्यासी औरगजेब उस देश मे पहुँचा, उस लोक की यात्रा की जहाँ से लौट कर पुन वह इस भौतिक स्वर्ग में न आ सका।. परन्तु अनन्तयौवना का वह शृगार, उसकी वह बाँकी अदा, उसकी वह तिरछी चितवन, उन सुन्दर अधरों की वह लाल लाल मादकता ...ससार मुग्ध था, .अन्य मुगल सम्राट् तो उस प्रेयसी के नखरे सहलाने को दौडे चले आए।

परन्तु अनन्तयौवना को भार्या बना कर कौन जीता रहा है ? स्वर्ग मे रह कर, वहाँ की अप्सराओं की चर्या स्वीकार करके कौन इस भूतल पर पुन नहीं लौटा ? चिरयौवना विषकन्या बन गई, और जब उसका विष व्याप्त हुआ मुगल साम्राज्य की नस नस मे, तब उस मदमाते सबल साम्राज्य के अग शिथिल हो गए, उसके सुन्दर सुडौल अंगो मे फोडे फूट निकले, गल गल कर, सड सड कर उसके अग गलित हो गए, वे क्षत-विक्षत हो गए। और सम्राटों का यौवन, दौलत की देवी, उस [illegible] मन्दिर पर न्यौछावर होकर उस देवी की [illegible] मे बिखर गया। दिल्ली के उस स्वर्ग की

मस्ती गली-गली भटकती फिरी, यत्र-तत्र ठोकरे खाती फिरी, स्वर्ग के देवताओ की मादकता हिजडो के पैरो मे लोटने लगी, उनका वैभव और विलासिता सूदखोर बनियो के हाथ बिके, उनके धर्म को लालिमा ने अछूता न छोडा, उनकी सत्ता को जगली अफगानो ने ठुकराया, उनके ताज और तख्त को रौद कर ईरान के गडरिये ने दिल्लीश्वर की प्रजा का भेड-बकरियो की तरह सहार किया।
और यह सब देख कर भी स्वर्ग की आत्मा अविचलित रही।

बूढो का बचपन था, उनका यौवन लौट रहा था, अशक्तो की सत्ता अपनी शान मे ही ऐंठी जा रही थी, जहान के शाह के वशजो ने भागना सीखा, ससार के रक्षक की बहू-बेटियाँ उफ ! उनकी वह दर्दनाक कहानी, उन महान् मुगलो के यश-चन्द्र की वह कालिमा काली स्याही से पुते हुए मुँह वाली लोह लेखनी भी उसका उल्लेख करते सकोच करती है, उनके दर्द के मारे उसका भी दिल फट कर दो टुकडे हो जाता है। उस स्वर्ग की वह न्यायतुला सुख के उस महान् भार को नही सह सकी। अपनी न्यायतुला कही नप्ट न हो जाय, इसी विचार से उस महान् अदृष्ट तुलाधारी ने सुख-दु ख का समतोल करने की सोची। स्वर्ग के सुख के सामने तुलने को दु.ख का सागर उमड पडा, उस स्वर्ग के वे अधिष्ठाता इस दु ख-सागर स बचने को इधर-उधर भागते फिरे, अनेको ने तो दूसरी दुनिया मे ही जाकर चैन ली।

और आलम का शाह जब उस दु खपूर्ण स्वर्ग का अधिप्ठाता बना तो वह स्वर्ग को ढूँढता फिरा, कभी गगा के प्रवाह मे उसके अस्तित्व का आभास उसे देख पडा, तो कभी त्रिवेणी मे ही उसे सुख का प्राधान्य जान पडा। वह भौतिक स्वर्ग क्षत-विक्षत हो गया था, उसका एक प्रेमी, साम्राज्य, मर चुका था, सर्वदा के लिए विनष्ट हो गया था। और जब उस स्वर्ग का दूसरा प्रेमी स्वर्ग मे लौटा तो वह उस स्वर्ग की सुन्दरता को खोजते खोजते इस ससार

के सौन्दर्य को भी खो बैठा। स्वर्ग का सुख पाने की इच्छा करने वाले को संसार का सुख भी न मिला।.. आलम का शाह पालम तक शासन करता था, स्वर्ग का अधिष्ठाता, उसका एकमात्र अधिकारी उस स्वर्ग को एक नज़र भी न देख पाता था, और जब इस लोक में देखने योग्य कुछ न रहा तब वह प्रज्ञाचक्षु हो गया। परन्तु वारांगनाओं को दिव्य दृष्टि से क्या काम? उन्होंने अन्धों का कब साथ दिया है? अन्धे कब तक अन्धी पर शासन कर सके हैं? दुर्भाग्य रूपी दुर्दिन के उस अँधियारे में, नितान्त अन्धेपन की उस अनन्त रात्रि में, रात्रि का राजा उस अंधी को ले उड़ा, और वह पहुँची वहाँ जहाँ समुद्र बीच शेषशायी सुखपूर्ण विश्राम कर रहे थे।

× × ×

"तुम्हारे पांवों में बेड़ियां पड़ी हैं और दिल पर ताले लगे हुए हैं; ज़रा सम्हल कर रहो!

"आँखें बन्द हैं, पांव कीचड़ में धँसे हुए हैं; ज़रा जागो, उठो!

"पश्चिम की ओर जा रहे हो, परन्तु तुम्हारा मुख तो पूरब ही की ओर है; पीछे क्यों ताक रहे हो, ज़रा अपने उद्देश्य की ओर तो दृष्टि डालो।"

परन्तु उन बेड़ियों से कौन छूटा है? बूढ़ों का यौवन कब उन्हें पार लगा सका है? जवानों की [illegible] पर तो दुनियाँ भी हँसती है। दिल को बिखेर कर उसे खो कर ताले लगाना, उनके पास अब रहा क्या है जो सम्हलें? वे बन्द आँखें कब खुली हैं? उनकी वह मस्ती, उस मस्ती की वह खुमारी और उस मद पर स्वर्ग का गुमान! परवशता के कीचड़ में फँसे हुए अन्धे कब सम्हल सके हैं? मृग-तृष्णा को पूर्ण करने की इच्छा से विलासिता के उस [illegible] स्वर्ग में फँस कर कौन निकल सका है? जागो और उठो! ..उस स्वर्ग में, [illegible] स्वर्ग में भी, किसे तोष था? किसकी प्यास बुझी थी? किसकी आँखों में [illegible] न थी?

कौन स्वप्न नही देख रहा था ? गए बीते सुख के स्वप्न, उस स्वर्ग की मादकता तथा भावी सुख की आशा का भार अशक्तो की पलके कहाँ तक इन सब को उठा कर भी खुली रह सकती थी ?

और स्वर्ग के निवासियो को यह चेतावनी, न्यायतुला का उन्हे स्मरण दिलाना, सुखभोग करने वालो को दु ख की याद दिलाना ! वह चेतावनी स्वय उस स्वर्ग मे खो सी गई । उन न्यायतुला के दोनो पलडो में झूलती हुई वे आँखे भी एकटक देखती रह गई मुगलो के इस पतन को, बुढापे मे उनके इस खिलवाड को । बूढो का बचपन एक बार फिर खेलता सा नज़र आया, उनकी सत्ता लौटती सी जान पडी, उनके स्वर्ग मे फिर बहार आती देख पडी , और उनका वैभव, वह तो अपने स्वामी की याद कर रो पडा उसे अब वहाँ भी पूछता कौन था ?

स्वर्ग ! स्वर्ग ! उसने फिर अपनी सल्तनत को लौटते देखा । इस लोक की बादशाहत खोकर, यहाँ अपना दिवाला निकाल कर, उसको देख सकने वाली आँखो को भी गँवा कर, अब उस स्वर्ग के शासक ने कल्पनालोक पर धावा मारा, और वहाँ अपना शासन स्थापित किया । दिव्य दृष्टि पाकर उस स्वर्ग के अधिष्ठाता को दूसरे लोक की ही बातो की सुध आने लगी । राज्यश्री को खोकर अब सरस्वती का आह्वान किया जाने लगा । दिल्ली मे वही दरबार लगता था, दीवान आम में नकीब की आवाज़ पर आँखे बिछ जाती थी, और शाहशाह दो सुन्दरियो पर अपना भार डाले आते थे, तख्त पर आसीन होते थे, परन्तु वहाँ इस पार्थिव साम्राज्य की चर्चा न होती थी, अब तो कल्पनालोक के दूत बैठे बैठे उस दूसरे लोक की ही खबरें सुनाते थे । शायर के बाद शायर आता था, अपनी शायरी सुनाता था, और शाहशाह सिर धुन धुन कर सुनता था, "वाह ! वाह !" कह कर रह जाता था । और कई बार तो स्वय भी कहने लगता था "ईं जानिब ने फरमाया है", अपनी गज़ल पढता था, दर-

दार के चारो कोनों मे "आदाव !" "आदाव !" की आवाजें गूंजने लगती थी। अब उस दरबार में चर्चा होती थी उस दूसरे लोक में होने वाली अनेकानेक घटनाओ की, वहाँ मयखाने का उजड़ना, साकी की गैरहाजरी, जाम का ढुलक जाना, यारो का बिछुड़ जाना, रकीबों की ज्यादती, माशूकों की कठोरता, आशिकों की बेबसी, उनके मरने के बाद उनकी मजार पर आकर माशूकों का रोना और माशूकों की गली से आशिकों का निकाला जाना. .। और दिल्ली-श्वर ने एक बार फिर जगदीश्वर की समता ही न की परन्तु उस बार तो उसे भी हरा दिया, दिल्लीश्वर की इस नवीन बादशाहत में कोई भी बन्धन न थे और न यहाँ जगदीश्वर की भीषण यातना का डर ही उन्हे सताता था।

परन्तु उस उजड़ते हुए असहाय स्वर्ग की दर्दनाक आवाज पहुँची उस कल्पनालोक में भी। सदेह स्वर्ग में, कल्पनालोक मे, पहुँच कर भी कौन अपने टूटे दिल को भुला सका है। वहाँ भी वही दर्द उठता था, कसक का अनुभव होता था, और जब कभी वह टूटा दिल थक कर सो जाता था, तभी कुछ उन्माद आता था . परन्तु वह क्षणिक उन्माद और उसके बाद फिर वही शोर उस सद-माने स्वर्ग की इससे अधिक व्यथापूर्ण तीखी आलोचना नहीं हो सकती थी। .और तभी उस स्वर्ग के पीड़ित शासक, अपने टूटे दिलो के कारण ही, उस दूसरे लोक में भी शासन न कर सके। बहादुर 'जफर' तो उस कल्पनालोक मे भी रोता था, कल्पना पहन कर ही वह वहाँ पहुँचा था। वहाँ भी वही बेबसी थी, वही रोना था। जहाँ भी शायिर के आँसुओ ने कल्पना की उच्छृंखलता को रोक दिया, उस [illegible] मार, आँसुओ मे सारी मस्ती बह गई थी, उन आँसुओ की [illegible] से वह सुकोमल भावना [illegible] हो गई थी। [illegible] '[illegible] ने [illegible] दिया' [illegible] [illegible] [illegible]

कौन स्वप्न नही देख रहा था ? गए बीते सुख के स्वप्न, उस स्वर्ग की मादकता तथा भावी सुख की आशा का भार अशक्तो की पलके कहाँ तक इन सब को उठा कर भी खुली रह सकती थी ?

और स्वर्ग के निवासियो को यह चेतावनी, न्यायतुला का उन्हे स्मरण दिलाना, सुखभोग करने वालो को दु ख की याद दिलाना ! वह चेतावनी स्वय उस स्वर्ग मे खो सी गई। उस न्यायतुला के दोनो पलडो मे भूलती हुई वे आँखे भी एकटक देखती रह गई मुगलो के इस पतन को, बुढापे मे उनके इस खिलवाड को। बूढो का बचपन एक बार फिर खेलता सा नज़र आया, उनकी सत्ता लौटती सी जान पडी, उनके स्वर्ग मे फिर बहार आती देख पडी , और उनका वैभव, वह तो अपने स्वामी की याद कर रो पडा उसे अब वहाँ भी पूछता कौन था ?

स्वर्ग ! स्वर्ग ! उसने फिर अपनी सल्तनत को लौटते देखा। इस लोक की बादशाहत खोकर, यहाँ अपना दिवाला निकाल कर, उसको देख सकने वाली आँखो को भी गँवा कर, अब उस स्वर्ग के शासक ने कल्पनालोक पर धावा मारा, और वहाँ अपना शासन स्थापित किया। दिव्य दृष्टि पाकर उस स्वर्ग के अधिष्ठाता को दूसरे लोक की ही बातो की सुध आने लगी। राज्यश्री को खोकर अब सरस्वती का आह्वान किया जाने लगा। दिल्ली मे वही दरबार लगता था, दीवान आम मे नकीब की आवाज पर आँखे बिछ जाती थी, और शाहशाह दो सुन्दरियो पर अपना भार डाले आते थे, तख़्त पर आसीन होते थे, परन्तु वहाँ इस पार्थिव साम्राज्य की चर्चा न होती थी, अब तो कल्पनालोक के दूत बैठे बैठे उस दूसरे लोक की ही खबरे सुनाते थे। शायर के बाद शायर आता था, अपनी शायरी सुनाता था, और शाहशाह सिर धुन धुन कर सुनता था, "वाह ! वाह !" कह कर रह जाता था। और कई बार तो स्वय भी कहने लगता था "ईं जानिब ने फरमाया है", अपनी गज़ल पढता था, दर-

सो' जाता था, तब कही एकाध सेहरा लिखा जाता था, और तभी इस कल्पनालोक के दो महारथियो मे चोचे हो जाया करती थी ।

नही ! नही ! यह सुख भी स्वर्ग को देखना नसीब न हुआ । उसका दिल टूट गया । स्वर्ग में, सुखलोक में रह कर भी कल्पनालोक मे विचरना स्वर्ग से देखा न गया । स्वर्ग मे भी ईर्ष्या की अग्नि धधक उठी, स्वर्ग का जो कुछ भी सुख बचा था वह भी जल कर भस्म हो गया, उस 'उजडे दयार का वह मुश्तेगुबार' उस भीषण दावानल मे जल भुन कर खाक हो गया, और दुर्भाग्य की उस आँधी ने उन भस्मावशेषो को यत्र-तत्र बिखेर दिया । नही ! नही ! उस दुर्भाग्य से उस स्वर्ग की बेबसी का वह मजार तक न देखा गया, उसे भी खण्ड-खण्ड कर उलट दिया और वह निर्जीव मृतप्राय पिण्ड लुढकता लुढकता उस स्वर्ग से नरक मे जा पडा ।

× × ×

[५]

स्वर्ग मे उस सुखलोक मे बेबसी का मजार, वह उजडा स्वर्ग भी काँप उठा अपने उस शूल से । निरन्तर रक्त के आँसू बहाने वाले उस नासूर को निकाल बाहर करने की उस स्वर्ग ने सोची । परन्तु उफ ! वह नासूर स्वर्ग के दिल मे ही तो था, उसको निकाल बाहर करने मे स्वर्ग ने अपने हृदय को फेक दिया । और अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध स्वर्ग जब दर्द के मारे तडप उठा, तब भूडोल हुआ, अन्धड उठा, प्रलय का दृश्य प्रत्यक्ष देख पडा । पुरानी सत्ता का भवन ढह गया, समय-रूपी पृथ्वी फट गई और मध्ययुग उसके अनन्त गर्भ में सर्वदा के लिए विलीन हो गया । सर्वनाश का भीषण ताण्डव हुआ, रुधिर की होली खेली गई, तोपो की गडगडाहट सुन पडी, हजारो का सहार हुआ, सहस्रो व्यक्ति बेघरबार के हो गए, दर दर के भिखारी बने । यमुना के प्रवाह का मार्ग भी बदला, उस स्वर्ग को,

स्वर्ग के उन शव को, छोड कर वह भी चल दी, और अपने इस वियोग पर वह जी भर कर रोई, किन्तु उसके उन आँसुओ को, स्वर्ग के प्रति उसके इस स्नेह को स्वर्ग के दुर्भाग्य ने सुखा दिया, उस नहर-इ-बहिश्त ने भी स्वर्ग की धमनियो में बहना छोड दिया। और अपनी उस प्रिय सखी, उस नवनगरी की दशा देख कर यमुना का वक्ष स्थल भग्न हो गया, खण्ड खण्ड होकर आज भी उसी मृत कंकाल के पाँवो तले बालू के रूप मे बिखरा पडा है। स्वर्ग भी खण्ड खण्ड हो गया, उसकी भाग्य-लक्ष्मी वहीं उन्ही खण्डहरो मे दब कर मर गई। और उस प्रेयसी के वे प्रेमी सर्वनाश के इस भीषण स्वरूप को देख कर काँप उठे और अपने स्वर्ग तक को डगमगाते देख, उसके नाश की घडियाँ आई जान वे भाग खडे हुए।

उफ ! उस स्वर्ग की वह अन्तिम रात ! जब स्वर्गीय जीवन अन्तिम साँसे ले रहा था। प्रलय का प्रवाह स्वर्ग के दरवाजे पर टकरा टकरा कर लौटता था और अधिकाधिक वेग के साथ पुन आक्रमण करता था। साँय साँय करती हुई ठण्डी हवा बह रही थी, न जाने कितनो के भाग्य-सितारे टूट टूट कर गिर रहे थे। दुर्भाग्य के उस दुर्दिन की अँधेरी अमावस्या की रात मे उस स्वर्ग में घूमती थी उस स्वर्ग के निर्माताओ की, उसके उन महान् अधिष्ठाताओ की प्रेतात्माएँ, कोने कोने में उस पुराने स्वर्ग को खोजती थी, उसको उस नए रूप-रंग में न पहिचान कर खोई हुई सी हो जाती थी, पागल की तरह दौडती थी और जाने उस भयोत्पादक स्वरूप से डर कर फिर अंधकार में विलीन हो जाती थी। क्रूर और निर्ममता के मुर्दों के मांस को दुष्ट तथा विकराल भूखे गीदड फाड-फाड कर, नोच-नोच कर खा रहे थे, उनकी सूखी हड्डियो को चबा रहे थे। सन्नाटे की गरज को चीर-चीर कर उसमें रह रह कर उसके निर्जीव शरीर को बाहर भीतर निहारने का प्रयत्न किया जा रहा था। उस भीषण समय के [illegible]

भयकर सौत को स्वर्ग मे घुसते देखा, हृदय को कँपा देने वाले अपने ककालरूपी स्वरूप को जीवन्मृत की काली साडी मे लपेटे वह मुगलो को रिझाने, उनसे प्रेम-प्रणय करने आई थी। तव तो राज्यश्री अपने प्रेमी का भविष्य सोच कर धक् से रह गई, वेहोश होकर चिर निद्रा मे सो गई। और मुगलो की राज्यश्री की उस करुणापूर्ण मृत्यु पर दो आँसू बहाने वाला भी उस दिन कोई न मिला।

आह! उस भीषण रात को दूर दूर तक सुन पडता था उस विलासितापूर्ण स्वर्ग मे वच्चो का चीखना, विघवाओ का विलाप, सधवाओ का सिसकना, वुड्ढो का विलखना और युवक-युवतियो का उसासे भरना। परन्तु उस रात भर भी स्वर्ग मे मुगलो का अन्तिम चिराग जलता रहा, वेवसी के उस मजार को वह आलोकित करता रहा, किन्तु आज उस मजार पर न तो फूल थे, न पतगे ही जलने को आ रहे थे, और न वुलवुल का सगीत ही सुनाई देता था। हाँ! उस झिलमिलाती हुई लौ के उस अन्धकारपूर्ण उजेले में अदृष्ट स्वरूप धारण किए, उस स्वर्ग की वह आत्मा, उस स्वर्गलोक का वह प्रेत, रो रो कर उस मजार को गीली कर रहा था, और अपनी दर्दभरी आवाज मे गा रहा था—

"न किसी की आँख का नूर हूँ
न किसी के दिल का क़रार हूँ।
जो किसी के काम न आ सके
मै वह एक मुश्तेगुबार हूँ।
मै नहीं हूँ नगमए जाँफिजां
मेरी सुन कर कोई करेगा क्या ?
मै बड़े बिरोग की हूँ सदा,
किसी दिलजले की पुकार हूँ।
मेरा रंगरूप बिगड़ गया
मेरा यार मुझसे बिछड़ गया।

साथ मुगलो की सत्ता तथा उनके अस्तित्व के जनाजे को उठाए, अपने भग्न हृदय को समेटे चला जा रहा था।

स्वर्ग से निकल कर उसने एक वार घूम कर पीछे देखा, अपनी प्रियतमा नगरी के उस मृतप्राय जीवन-विहीन हृदय की ओर उसने एक नजर डाली, और उस स्वर्ग की, मुगलो की उस प्रेयसी की, अपने प्रियतम से अन्तिम बार चार आँखें हुईं, वह उस प्यारे की ओर एकटक देखती ही रह गई और दो हिचकी मे उसने दम तोडा। आँखे खुली की खुली रह गईं, नेत्र-द्वार के वे पटल आज भी खुले पडे है।

और बहादुर ने अपनी प्रेयसी की इस अतिम घडी को देखा, उसने मुख फेर लिया, जनाजा आगे वढा। धूल बिखर रही थी, आज पैरो मे पडी निरन्तर कुचली जाने वाली उस पृथ्वी ने भी स्वर्ग के अधिष्ठाताओ के सिर पर धूल फेकी, और मृत स्वर्ग के उस स्वामी ने बेबसी की नजर से आसमान को ताका। खून की होली खेली जा चुकी थी, और स्वर्ग के निवासी अपने प्यारो को समेटे, स्वर्ग के उस मृत ककाल को छोड कर भागे चले जा रहे थे। स्वर्ग से निकला हुआ वह अतीव दु खी व्यक्ति, उस स्वर्ग का वह अन्तिम प्रेमी, आश्रय के लिए नरक मे पहुँचा।

नरक! दु ख का वह आगार भी बेबसी के इस मजार को देख कर रो पडा, और उफ! नरक का भी दिल करुणा के आवेश मे आकर फट पडा, पत्थर तक टुकडे टुकडे हो गए। और तव प्रथम वार दिल्ली मे मुगलो का झडा गाडने वाले शाहजादे तथा वाद के अभागे सम्राट् हुमायूं की कब्र ने उस जीवित समाधि की अन्तिम घडियाँ देखी। और वही उस नरक मे, अकवर की प्यारी सत्ता पृथ्वी मे समा गई, जहाँगीर की विलासिता बिखर गई, शाहजहाँ का वैभव जल-भुन कर खाक हो गया, औरगजेब की कट्टरता मुगलो के रुधिर में डूब गई और पिछले मुगलो की असमर्थता भी न जाने

सिसक कर रो रहा था, उसासे भर रहा था, निश्वासे लेता था और उन्ही निश्वासो ने उस वेवसी के मज़ार को नरक से भी उडा दिया। स्वर्ग के उस अन्तिम उपभोक्ता, मुगल वश के उस ज़िन्दे जनाजे को नरक मे भी स्थान न मिला, दु खो का आगार भी उस दुखियारे को अपने अचल मे न समेट सका, उसे आश्रय न दे सका। जलते हुए अगारो को छाती से लगा कर कौन जला नही है ? और उस उजडे स्वर्ग मे, उस विलखते हुए नरक मे दहकते हुए अगारे चुनने वाले वहाँ न मिले।

वहादुर नरक मे भी लुट गया। वहाँ उसने अपने टूटे दिल को भी कुचला जाते देखा, उस हृदय की गम्भीर दरारो की खोज होते देखी, और अपने दिल के उन टुकडो को ससार द्वारा ठुकराया जाते देखा। उफ ! वह वहाँ से भी भागा। अव तो अपनी आशा के एकमात्र सहारे को भी अपनी देखती आँखो नष्ट होते देख कर उसे आशा की सूरत तो क्या उसके नाम तक से घृणा हो गई। जहाँ के निवासियो के चेहरो से आशावादिता झलकती है, उसी इस भारत से उसने मुख मोड लिया। उसे अब निराशा का पीलिया हो गया, और तब वह पहुँचा उस देश में जहाँ सब कुछ पीला ही पीला देख पडता था। नर-नारी भी पीत वर्ण की चादर ही ओढे नही फिरते थे किन्तु स्वय भी उस पीत वर्ण मे ही शराबोर थे। निराशा के उस पुतले ने निराशापूर्ण देश की उस एकान्त अन्धेरी सुनसान रात्रि मे ही अन्तिम साँसे तोडी। निराशा की वह उत्कट घडी नही ! नही ! उस दिन की याद कर, वह दिन देख कर फिर ससार मे विश्वास करना—नही, यह नही हो सकता। मानवीय इच्छाओ की विफलता का वह भीषण अट्टहास ! 'जफर' की वे अन्तिम निश्वासे

उफ !

× × ×

स्वर्ग उजड गया और दुर्भाग्य के उस अन्धड ने उसके टूटे दिल

को न जाने कहाँ फेंक दिया। उस चमन का वह बुलबुल रो चीख कर, तड़फड़ा कर न जाने कहाँ उड़ गया। उसकी आत्मा ने भी उसका साथ छोड़ दिया। और अब उसका मृत कंकाल वहीं पड़ा है। सावन-भादों की बरसात की तरह निरन्तर बहने वाले आँसू भी सूख गए; वह अस्थिपंजर, मांस-पेशियों तथा रक्त से विहीन, जीवन-रहित, हड्डियों का वह समूह निर्जीव होकर पड़ गया।

और अब भारतीय सम्राटों की उस अनूर्यम्पश्या प्रेयसी का वह अस्थिपंजर दर्शकों के लिए देखने की एक वस्तु हो गया है। दो आने में ही हो जाती है राज्यश्री की उस लाडली शाहजहाँ की नवोढा के उस सुकोमल शरीर के रहे-सहे अवशेषों की सैर! बस दो आने में ही देख पाते हैं उस उजड़े स्वर्ग के वे सारे दृश्य। और उस उजड़े स्वर्ग को, उस अस्थिपंजर को देख कर संसार आश्चर्य-चकित हो जाता है, आँखें फाड़ फाड़ कर उसे देखता है, उसमें सुन्दरता का आभास देख पड़ता है, श्वेत हड्डियों के उन टुकड़ों में सुकोमलता का अनुभव करता है, उन सड़े-गले रहे-सहे लाल-लाल मांसपिण्डों में उसे मस्ती की मादक गंध आती जान पड़ती है। उस शान्त निस्तब्धता में उस मृत स्वर्ग के दिल की धड़कन सुनने का वह प्रयत्न करता है, उस जीवन-रहित स्थान में रस की सरसता का स्वाद उसे आता है, उस अँधेरे खण्डहर में कोहनूर की ज्योति फैली हुई जान पड़ती है। और रत्नों तक का तिरस्कार कर सोने-चाँदी को रौंदने वाले पत्थरों की छाती पर घास-फूस को उगते देख कर भी जब संसार कह उठता है—"अगर पृथ्वी पर स्वर्ग है तो यहीं है! यहीं है! यहीं है!" तब तो... वह निर्जीव अस्थिपंजर अपनी सफलता का अनुभव कर हर्ष के मारे गद्गद हो जाता है, और पुरानी स्मृतियों को याद कर के रोता है, उसासें भर कर सिसकता है। और उस निर्जीव निस्तब्ध मूक लोक में उन गहरी निश्वासों की करुण ध्वनि सुन पड़ती है; उन श्वेत पत्थरों पर [illegible],

आँसुओ के चिह्न देख पडते है, और तब उस अंधेरी रात मे उस स्वर्ग की विगत आत्मा लौट पडती है और रो-रो कर कहती सुन पडती है—

"आज दो फूल को मोहताज है तुरबत मेरी।"

और लाडली बेटी की वह माँ, विगत राज्यश्री, भी चीखने लगती है और उसासे भर कर कहती है—

"तमन्ना फूट कर रोई थी
जिस पर, यह वह तुरबत है।"

मुगलो की प्रेयसी, अनन्तयौवना राज्यश्री की उस प्यारी पुत्री का अन्त हो गया। इस लोक के उस स्वर्ग की वह आत्मा न जाने कहाँ विलीन हो गई, परन्तु उसका वह मृत शरीर, उन मुगलो की विलास-वासनाओ की वह समाधि, उनकी आकाक्षाओ का वह मजार, उस उत्तप्त स्वर्ग का वह ठण्डा अस्थिपजर, मुगलो के सुख-वैभव और मादकता के वे रूखे-सूखे अवशेष, उनके उन्मत्त प्रेम का वह ककाल अनन्तयौवना ने उन अवशेषो पर कफन डाल दिया और रुधिर के आँसू बहाए, उफ! उस ककाल पर उन लाल लाल आँसुओ के दाग, उनकी वह लालिमा आज भी देख पडती है।

उस स्वर्ग का वह ककाल अरे! उसका सुख-स्वप्न लेकर वे सारी राते, वे सारी सुखद घडियाँ, वह मस्ताना जीवन, न जाने कहाँ विलीन हो गए? और उनके पथ को आलोकित करने वाली, अपने प्रियतम के पथ मे बिछने वाली, अपनी तिरछी चितवन द्वारा उन्हे अपनी ओर आकर्षित करने वाली, वे मस्तानी आँखे बुझ कर भी आज खुली है, गड्ढे मे निर्जीव धँसी पडी है। और आज भी उस ककाल मे रात और दिन होता है। मर जाने पर भी उस ककाल का चिर यौवन उसको निर्जीव नही होने देता। स्वर्ग की वह चिरसुख-वासना, मिलन की वह अक्षय आस, सुख-स्वप्न की वह मादकता, यौवन की वह तडप, वह मस्ती, आशा की न बुझ

मकने वाली वह आग, . आज भी ये सब उस ककाल मे अपना रग लाते है। वे लाल पत्थर आज भी आशा की अदृष्ट रूप से जलने वाली उस अग्नि में धधकते है, और उसी की दहकती हुई आग से वे पत्थर, निर्जीव पत्थर, भी लाल लाल हो रहे है, और हाड-मास की वह राख, हड्डियो का वह ढेर, वे श्वेत पत्थर .आँसुओ के पानी से बुझने पर भी आज उनमें गरमी है। और जब सूरज चमकता है और उस कंकाल की हड्डी हड्डी को करो से छूकर अपने प्रकाश द्वारा आलोकित करता है, तब वे पत्थर अपने पुराने प्रताप को याद कर तथा सूरज की इस ज्यादती का अनुभव कर तपतपा जाते है, उन्हे अपने गए बीते यौवन की याद आ जाती है, अपना विनष्ट सौन्दर्य तथा अपना अन्तर्हित वैभव उनकी आँखो के सम्मुख नाचने लगता है, और रात्रि में चांद को देख कर उन्हे सुध आ जाती है अपने उस प्यारे प्रेमी की, और मिलन की सुखद घडियो की स्मृतियाँ पुन उठ खडी होती है .तब तो वे पत्थर भी रो पडते है, उस अँधेरे में दो आँसू बहा बहा कर ठण्डी निश्वासें भरते है।

उन अनन्तयौवना की लाडली का वह उल्लास, उसकी वह विलासिता, उसका वह यौवन, तथा उसकी वह मस्ती .सब कुछ नष्ट हो गए.. , परन्तु उसकी वह चिरसुख-भावना, पुन मिलन की वह अक्षय आस,.. प्रियतम की वह याद...आह! आज भी यह ककाल रोता है, निश्वासें भरता है, और जब कभी नाश का कुल्हाडा चलता है तो सिसकता है, और कराह कराह कर अस्फुट ध्वनि में विवशता भरी आवाज़ में प्रार्थना करता है —

"कागा सब तन खाइयो,
चुन चुन खइयो मास।
दो नैना मत खाइयो,
पिया मिलन की आस।"

नकने वाली वह आग, . आज भी ये सब उस कंकाल मे अपना रग लाते है। वे लाल पत्थर आज भी आशा की अदृष्ट रूप से जलने वाली उस अग्नि में धधकते है, और उसी की दहकती हुई आग से वे पत्थर, निर्जीव पत्थर, भी लाल लाल हो रहे है, और हाड-मास की वह राख, हड्डियो का वह ढेर, वे श्वेत पत्थर. .आँसुओ के पानी से बुझने पर भी आज उनमें गरमी है। और जब सूरज चमकता है और उस कंकाल की हड्डी हड्डी को करो से छूकर अपने प्रकाश द्वारा आलोकित करता है, तब वे पत्थर अपने पुराने प्रताप को याद कर तथा सूरज की इस ज्यादती का अनुभव कर तपतपा जाते है, उन्हें अपने गए बीते यौवन की याद आ जाती है, अपना विनष्ट सौन्दर्य तथा अपना अन्तर्हित वैभव उनकी आँखो के सम्मुख नाचने लगता है, और रात्रि में चाँद को देख कर उन्हे सुध आ जाती है अपने उस प्यारे प्रेमी की, और मिलन की सुखद घडियो की स्मृतियाँ पुन उठ खडी होती है.. तब तो वे पत्थर भी रो पडते है, उस अँधेरे में दो आँसू बहा बहा कर ठण्डी निश्वासें भरते है।

उस अनन्तयौवना की लाड़ली का वह उल्लास, उसकी वह विलासिता, उसका वह यौवन, तथा उसकी वह मस्ती ..सब कुछ नष्ट हो गए . , परन्तु उसकी वह चिरसुख-भावना, पुन. मिलन की वह अक्षय आस,.. प्रियतम की वह याद .आह ! आज भी वह कंकाल रोता है, निश्वासे भरता है, और जब कभी नाग का फुन्कारा चलता है तो सिसकता है, और कराह कराह कर अस्फुट ध्वनि में विवशता भरी आवाज में प्रार्थना करता है —

"कागा सब तन खाइयो,
चुन चुन खइयो मास।
दो नैना मत खाइयो,
पिया मिलन की आस।"